गायत्री की अनुष्ठान एवं पुरश्चरण साधनाएँ

श्रीराम शर्मा आचार्य

अनुष्ठान–गायत्री उपासना के उच्च सोपान

एक नागरिक प्रश्न करता है आर्य ! वह कौनसी उपासना है जिससे जातीय जीवन गौरवान्वित होता है ? इस पर गोपथ ब्राह्मण के रचयिता ने उत्तर दिया–

"तेजो वै गायत्री छन्दसां तेजो रथन्तरम् साम्नाम् तेजश्चतुर्विंशस्तो माना तेज एवं तत्सम्यक् दधाति पुत्रस्य पुत्रस्तेजस्वी भवति"

–गोपथ ब्राह्मण

हे तात् ! समस्त वेदों का तेज गायत्री है साम्वेद का यह छन्द ही २४ स्तम्भों का वह दिव्य तेज है जिसे धारण करने वालों की वंश परम्परा तेजस्वी होती है ।

हिन्दुओं के लिये अनिवार्य सन्ध्यावंदन की प्रक्रिया यहीं से प्रारम्भ होती है । इस ब्रह्म तेज को धारण करने वाली हिन्दू जाति को शौर्य, साहस और स्वाभिमान की दृष्टि से कोई परास्त नहीं कर सका । यहाँ का कर्मयोग विख्यात है । यहाँ के पारिवारिक जीवन का शील और सदाचार, यहाँ के वैयक्तिक जीवन की निष्ठायें जब तक मानव वंश है, अजर–अमर बनी रहेंगी । यह गायत्री उपासना के ही बल पर था ।

यह दुर्भाग्य ही है कि कालान्तर में इस पुण्य परम्परा के विश्रृंखलित हो जाने के कारण जातीय जीवन निस्तेज और निष्प्राण होता गया किन्तु युग निर्माण योजना ने अब उस अन्धकार को दूर कर दिया है । लम्बे समय तक उसे अपनी आजीविका का साधन बनाकर, बन्दीगृह में, मिथ्या भ्रान्तियों में डाले रखकर उस महान विज्ञान से वंचित रखा गया । अब वैसा नहीं रहा । गायत्री उपासना का पुण्य लाभ हर कोई प्राप्त कर सकता है । प्रातः मध्यान्ह और संध्या साधना के विधान निश्चित हैं । अपनी सुविधा अनुसार कम या अधिक मात्रा में गायत्री उपासना का मुफ्त लाभ हर कोई भी ले सकता है ।

उससे उच्च स्तर का ब्रह्म तेज, सिद्धि और प्राण की प्रचुर मात्रा अर्जित करनी हो, किसी सांसारिक कठिनाई को पार करना हो अथवा कोई सकाम प्रयोजन हो, उसके लिये गायत्री की विशेष साधनायें सम्पन्न

की जाती हैं । इस क्रिया को अनुष्ठान के नाम से पुकारते हैं । जब कहीं परदेश के लिये यात्रा की जाती है तो रास्ते के लिये कुछ भोजन साम्ग्री तथा खर्च को रुपये साथ रख लेना आवश्यक होता है । यदि वह मार्ग व्यय साथ न हो तो यात्रा बड़ी कष्ट साध्य हो जाती है । अनुष्ठान एक प्रकार का मार्ग व्यय है । इस साधना को करने से पूँजी जमा हो जाती है उसे साथ लेकर किसी भी भौतिक या आध्यात्मिक कार्य में जुटा जाय तो यात्रा बड़ी सरल हो जाती है ।

बच्चा दिन भर माँ–माँ पुकारता रहता है, माता दिन भर बेटा, लल्ला कह कर उसको उत्तर देती रहती है, यह लाड़ दुलार यों ही दिन भर चलता रहता है, पर जब कोई विशेष आवश्यकता पड़ती है, कष्ट होता है, कठिनाई आती है, आशंका होती है, या सहायता की जरूरत पड़ती है तो बालक विशेष बल पूर्वक, विशेष स्तर से माता को पुकारता है । इस विशेष पुकार को सुनकर माता अपने अन्य कामों को पीछे छोड़कर बालक के पास दौड़ आती है और उसकी सहायता करती है । अनुष्ठान साधक की ऐसी ही पुकार है । जिसमें विशेष आकर्षण होता है, उस आकर्षण से गायत्री–शक्ति विशेष रूप से साधक के समीप एकत्रित हो जाती है ।

सांसारिक कठिनाइयों, में, मानसिक उलझनों, आन्तरिक उद्वेगों में गायत्री–अनुष्ठान से असाधारण सहायता मिलती है । उसके प्रभाव से मनोभूमि में भौतिक परिवर्तन होते हैं, जिनके कारण कठिनाई का उचित हल निकल आता है । उपासक में ऐसी बुद्धि, प्रतिभा, सुझ–बूझ और दूरदर्शिता पैदा हो जाती है, जिसके कारण वह ऐसा रास्ता प्राप्त कर लेता है जो कठिनाई के निवारण में रामबाण की तरह फलप्रद सिद्ध होता है । भ्रांत मस्तिष्क में कुछ असंगत, असंभव और अनावश्यक विचारधारायें, कामनायें, मान्यतायें घुस पड़ती हैं, जिनके कारण वह व्यक्ति अकारण दुःखी बना रहता है । गायत्री साधना से मस्तिष्क का ऐसा परिमार्जन हो जाता है, जिसमें कुछ समय पहले जो बातें अत्यंत आवश्यक और महत्वपूर्ण लगतीं थीं, वे ही पीछे अनावश्यक और अनुपयुक्त लगने लगती हैं । वह उधर से मुँह मोड़ लेता है । इस प्रकार यह मानसिक परिवर्तन इतना आनन्दमय सिद्ध होता है जितना कि पूर्व कल्पित भ्रांत कामनाओं के पूर्ण होने पर भी सुख न मिलता । अनुष्ठान द्वारा ऐसे ही ज्ञात और अज्ञात परिवर्तन होते हैं जिनके कारण दुःखी और चिन्ताओं से ग्रस्त मनुष्य थोड़े समय में सुख–शान्ति का स्वर्गीय जीवन बिताने की स्थिति में पहुँच जाता है । गायत्री संहिता में कहा गया है–

दैन्यरुक् शोक चिंतानां विरोधाक्रमणापदाम् ।
कार्य गायत्र्यनुष्ठानं भायानां वारणाय च ।। ४१ ।।

दीनता, रोग, शोक, विरोध, आक्रमण, आपत्तियाँ और भय इनके निवारण के लिये गायत्री का अनुष्ठान करना चाहिए ।

जायते स स्थितिरस्मान्मनोऽभिलाषयान्विताः ।
यतः सर्वेऽभिजायन्ते यथा काल हि पूर्णताम् ।। ४२ ।।

अनुष्ठान से वह स्थिति पैदा होती है जिससे समस्त मनोवांछित अभिलाषायें यथा समय पूर्णता को प्राप्त होती हैं ।

अनुष्ठानात्तु वै तस्मात् गुप्ताध्यात्मिक शक्तयः ।
चमत्कारमयां लोके प्राप्यन्तेऽनेकधा बुधः ।। ४३ ।।

अनुष्ठान से साधकों को संसार में चमत्कार से पूर्ण अनेक प्रकार की गुप्त आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं ।

अनुष्ठानों की तीन श्रेणियाँ हैं (१) लघु (२) मध्यम और (३) पूर्ण । लघु अनुष्ठान में २४ हजार जप ९ दिन में पूरा करना पड़ता है । मध्यम सवा लाख का होता है । उसके लिये ४० दिन की अवधि नियत है । पूर्ण अनुष्ठान २४ लाख जप का होता है । उसमें एक वर्ष लगता है ।

मंत्र जप की तरह मंत्र लेखन के भी अनुष्ठान किये जा सकते हैं । मंत्र लेखन साधना के सम्बन्ध में विशेष विवरण इसी पुस्तक के अगले अध्यायों में है ।

मंत्र लेखन अनुष्ठान में सभी नियम जप अनुष्ठान की तरह ही होते हैं । केवल जप की जगह लेखन किया जाता है । एक मंत्र लेखन १० मंत्रों के जप के बराबर माना जाता है । तदनुसार २४००० जप के स्थान पर २४००, १२५००० के स्थान पर १२५०० तथा २४००००० के स्थान पर २४०००० मंत्र लेखन किया जाता है ।

लघु अनुष्ठान ९ दिन में २७ माला प्रतिदिन के हिसाब से पूर्ण होता है । मध्यम अनुष्ठान सवा लक्ष जप का ४० दिन में ३३ माला प्रति दिन के हिसाब से पूर्ण करना चाहिए । २४ लाख यदि एक वर्ष में करना हो तो ६६ माला प्रतिदिन करनी पड़ती है । दूसरा तरीका यह है कि २४ हजार के सौ अनुष्ठानों में या सवा लक्ष के २० अनुष्ठानों में विभक्त करके इसे पूरा किया जाय ।

अनुष्ठान पूरा होने पर उसकी समाप्ति का गायत्री यज्ञ किया जाता है । सामान्य नियम यह है कि जप के सतांश भाग की आहुतियाँ हों ।

किन्तु यदि संकल्पित जप का दसवाँ भाग अतिरिक्त जप कर दिया जाय तो आहुतियों का प्रतिबन्ध नहीं रह जाता सुविधानुसार कितनी भी आहुतियाँ करके अनुष्ठान की पूर्णाहुति की जा सकती है । अनुष्ठान किसी शुभ दिन से आरम्भ करना चाहिए इसके लिए रविवार, गुरुवार एवं प्रतिपदा, पंचमी, एकादशी, पूर्णिमा तिथियाँ उत्तम हैं । तिथि या वार कोई एक ही उत्तम हो तो करने के लिये पर्याप्त है । चैत्र और अश्विन की नवरात्रियाँ २४ हजार लघु अनुष्ठान के लिये अधिक उपयुक्त हैं । वैसे कभी भी सुविधानुसार किया जा सकता है ।

अनुष्ठान आरम्भ करते हुए नित्य गायत्री का आवाहन और अन्त में विसर्जन करना चाहिए । इस प्रतिष्ठा में भावना और निवेदन प्रधान है । श्रद्धापूर्वक 'भगवती' जगज्जननी, भक्त वत्सला गायत्री से यहाँ प्रतिष्ठित होने का अनुग्रह कीजिये । ऐसी प्रार्थना संस्कृत या मात्र भाषा में करनी चाहिए । विश्वास करना चाहिए कि प्रार्थना को स्वीकार करके वे कृपा पूर्वक पधार गई हैं । विसर्जन करते समय प्रार्थना करनी चाहिए कि "आदि शक्ति, भव-भय हारिणी, शक्तिदायिनी, तरण-तारिणी मातृके ! अब विसर्जित हूजिये ।" इस भावना को संस्कृत या अपनी मात्र भाषा में कह सकते हैं, इस प्रार्थना के साथ-साथ यह विश्वास करना चाहिए कि प्रार्थना स्वीकार करके वे विसर्जित हो गई हैं ।

किसी छोटी चौकी, चबूतरी या आसन पर फूलों का एक छोटा सुन्दर सा आसन बनाना चाहिए और उस पर गायत्री की प्रतिष्ठा होने की भावना करनी चाहिए । साकार उपासना के समर्थक भगवती का कोई सुन्दर सा चित्र अथवा प्रतिमा को उन फूलों पर स्थापित कर सकते हैं । निराकार के उपासक निराकार भगवती की शक्ति का एक स्फुलिंग वहाँ प्रतिष्ठित होने की भावना कर सकते हैं । कोई-कोई साधक धूपबत्ती की, दीपक की अग्नि-शिखा में भगवती की चैतन्य ज्वाला का दर्शन करते हैं और उसी दीपक या धूपबत्ती को फूलों पर प्रतिष्ठित करके अपनी आराध्य शक्ति की उपस्थिति अनुभव करते हैं । विसर्जन के समय प्रतिमा को हटा कर शयन करा देना चाहिए, पुष्पों को जलाशय या पवित्र स्थान पर विसर्जित कर देना चाहिए ।

पूर्व वर्णित विधि से प्रातः काल पूर्वाभिमुख होकर शुद्ध भूमि पर शुद्ध होकर कुश के आसन पर बैठें । जल का पात्र समीप रखलें । धूप और दीपक जप के समय जलते रहना चाहिए । बुझ जाय तो उस बत्ती को

हटा कर नई बत्ती डालकर पुनः जलाना चाहिए । दीपक या उसमें पड़े हुए घृत को हटाने की आवश्यकता नहीं है ।

पुष्प आसन पर गायत्री की प्रतिष्ठा और पूजा अनुष्ठान काल में नित्य होती रहनी चाहिए, जप के समय मन को श्रद्धान्वित रखना चाहिए, स्थिर बनाना चाहिए । मन चारों ओर न दौड़े इसलिये पूर्व वर्णित ध्यान भावना के अनुसार गायत्री का ध्यान करते हुए जप करना चाहिए । साधना के इस आवश्यक अंग में ध्यान लगा देने से वह एक कार्य में उलझा रहता है और जगह–जगह नहीं भागता । भागे तो उसे रोक–रोक कर बार–बार ध्यान भावना पर लगाना चाहिए । इस विधि से एकाग्रता की दिन–दिन वृद्धि होती चलती है ।

एक समय अन्नाहार, एक समय फलाहार, दो समय दूध और फल, एक समय आहार, एक समय फल और दूध का आहार, केवल दूध का आहार इसमें से जो उपवास अपनी सामर्थ्यानुकूल हो उसी के अनुसार साधना आरम्भ कर देनी चाहिए । प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर शौच स्नान से निवृत्त होकर पूर्व वर्णित नियमों को ध्यान में रखते हुए बढ़ना चाहिए ।

दो नवरात्रियाँ–गायत्री उपासना के दो अयाचित वरदान

गायत्री उपासना का सामान्य समय तो हर दिन, हर घड़ी है, उसे रात में भी जपा जा सकता है दिन में भी । दिन में उपांशु अर्थात् उँगलियों में अथवा माला से गणना का क्रम चलाते हुए, मुँह से मद्धिम उच्चारण करते हुए जप करने का विधान है और रात में मानसिक जप । मंत्र लेखन भी एक प्रकार का मानसिक जप ही है, वह भी रात में हो सकता है । गायत्री की तंत्र साधनायें रात में सम्पन्न की जा सकती हैं । अस्वस्थ्य और आपत्ति कालीन स्थिति में राह चलते या बिस्तर पर लेटे–लेटे भी मानसिक जप किया जा सकता है । इन सब में कोई विधि निषेध नहीं है पर यदि कहीं मुहूर्त की बात आती हो तो गायत्री उपासना के लिये जितना उपयुक्त अवसर नवरात्रियों का होता है, उतना दूसरा नहीं । वर्ष की दो नव रात्रियों को गायत्री माता के दो अयाचित वरदान ही कहा जा सकता है । इस अवधि में उनका कोमल प्राण धरती पर प्रवाहित होता है । वृक्ष वनस्पति नव पल्लव धारण करते हैं, जीव जन्तुओं में नई चेतना इन्हीं दिनों अती है । विधि पूर्वक सम्पन्न नवरात्रि साधना से

स्वास्थ्य की नीवें तक हिल सकतीं हैं । असाध्य बीमारियाँ तक नवरात्रि अनुष्ठान से दूर होती हमने स्वयं देखीं हैं ।

विभिन्न धानों के बोने के अपने-अपने समय होते हैं । इन दिनों इन्हें बोया जाय तो किसान का परिश्रम अधिक सफल होगा और अधिक अच्छी फसल मिलेगी । यों तो कोई भी अनाज किसी भी समय बोया जा सकता है और उसमें से अंकुर निकल ही आते हैं । पर ऋतु अनुकूल न होने से उसकी अभिवृद्धि वैसी नहीं होती जैसी होनी चाहिए । गर्भाधान का ऋतुकाल कुछ विशेष समय तक ही रहता है । उसके बाद वह स्थिति चली जाती है । बसंत का प्रकृति प्रवाह ऐसा होता है जिसमें पेड़ पौधों पर, पशु पक्षियों पर अनायास ही मस्ती छाई रहती है । इसमें फूलने फलने का उत्साह बिना किसी बाहरी प्रयत्न के भीतर से ही उमड़ता है । माली इन्हीं दिनों सबसे अधिक व्यस्त रहते हैं । उद्यान की साज-सम्भाल के लिए वही दिन सबसे अधिक सतर्कता के होते हैं । प्राणियों में से अधिकांश का गर्भाधान काल बसंत ऋतु ही होता है । प्रकृति प्रेरणा से कुछ ऐसे प्रवाह समय पर आते रहते हैं जो विभिन्न प्रयोजनों के लिये विशेष रूप से उपयुक्त रहते हैं । उस अनुकूलता की स्थिति में किये हुए प्रयत्न अपेक्षाकृत अधिक सफल भी रहते हैं हवा का रुख पीठ पीछे हो तो यात्रा सरल पड़ेगी, सामने होने पर श्रम और समय भी लग जायगा । गायत्री की विशेष उपासना के लिये दोनों नवरात्रियों का महत्व अत्यधिक है । निषेध किसी भी समय का नहीं है किन्तु विशिष्टता की दृष्टि से वह अधिक महत्वपूर्ण अवसर है । अनुष्ठान पुरश्चरण जैसी साधनाओं के लिये यह समय अधिक अनुकूल माना जाता रहा है । जो लोग अन्य समय साधना नहीं कर पाते वे भी यह प्रयत्न करते हैं कि नवरात्रि का पर्व खाली न जाने पाये । उस समय तो कुछ न कुछ करने के लिये किसी न किसी प्रकार व्यस्त व्यक्ति भी समय निकाल लेते हैं ।

भगवान का नाम कभी भी लिया जा सकता है । उसके लिये कोई रोक टोक नहीं है, पर प्रातः सायं का संध्या काल इसके लिये उपयुक्त माना गया है । संध्या-वन्दन के नित्य कर्म का नाम करण ही उसके लिये निर्धारित समय की प्रधानता देते हुए किया गया है । दिन और रात्रि के मिलन की बेला जिन दो समयों पर आती है उसे सन्धि-काल कहते हैं । सन्धि काल में जो पूजा प्रार्थना की जाय सो 'सन्ध्या' । सन्ध्या का पुण्य और प्रभाव अन्य समय में की गयी उपासना की तुलना में अपेक्षाकृत

अधिक ही माना गया है । दिन रात के मिलन काल की तरह ही ॠतुओं का मिलन काल भी कई प्रयोजनों के लिये अधिक उपयोगी माना गया है । ॠतुऐं यों तो छै या तीन भी गिनी जाती हैं पर वस्तुतः वे हैं दो ही । एक सर्दी और दूसरी गर्मी । इन दोनों का मिलन काल आश्विन और चैत्र की नवरात्रि में दो बार आता है । उन्हें ॠतु सन्ध्या कहते हैं । शास्त्रों में वर्णन है कि जिस प्रकार ॠतुकाल में नारी के गर्भधारण की अधिक सम्भावना रहती है, उसी प्रकार ॠतुओं की उमंग का नवरात्रि काल आध्यात्मिक साधनाओं के लिये विशेष रूप से फलप्रद होता है ।

नवरात्रि पर्व शक्ति पर्व कहलाता है, ब्राह्मी शक्ति एक ही है– 'गायत्री' । उसी त्रिपदा की तीन धारायें सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा के नाम से प्रख्यात हैं । शक्ति साधना की प्राचीन परम्परा गायत्री उपासना की है । मध्य–काल में सम्प्रदायों द्वारा उनके अन्यान्य रूप भी चल पड़े और शक्ति देवियों के नाम पर अनेकों नाम रूप सामने आये । फिर भी प्रधानता गायत्री की ही रही है । सनातन परम्पराओं की पूरी तरह अवमानना, सम्प्रदायिक अन्धेरों के उभार में भी न हो सकी । शक्ति के अनेक रूप अपने–अपने क्षेत्रों और सम्प्रदायों में चलते रहे, फिर भी उच्चस्तरीय परम्परा गायत्री उपासना की ही रही है । दोनों नवरात्रियों को गायत्री की विशिष्ट उपासनाओं के लिए सबसे उपयुक्त समय माना जाता रहा है ।

शक्ति की उपासना के विभिन्न प्रचलन विभिन्न रूपों में समस्त भारत वर्ष में देखे जा सकते हैं । इसके लिये सभी जगह नवरात्रियाँ ही उपयुक्त पर्व के रूप में मनाई जातीं हैं । बंगाल में दुर्गा पूजा, गुजरात में अम्बा गरवा, राजस्थान में गणगौर का उत्सव गाँव–गाँव घर–घर व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही रूपों में मनाया जाता है । यहाँ तक कि छोटी लड़कियाँ भी साँझी के नाम से शतमुख जाति के रूप में उनकी पूजा प्रतिष्ठा करती और व्रत उपवास रखती हैं । उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश में विजयादशमी तक रामलीलायें होतीं हैं, शस्त्र पूजन और दुर्गा वंदन के रूप में वही पर्व बहुत समारोह पूर्वक मनाया जाता है । योद्धाओं का यही सैन्य पर्व है । दुर्गा सप्तशती पाठ ठन्हीं दिनों किये–कराये जाते हैं । इन दिनों कितनी ही जगह बड़े–बड़े मेले भरते हैं और उनमें किसी न किसी रूप में शक्ति पूजा प्रधान रहती है । भारत में अनेकों छोटे बडे शक्तिपीठ हैं । उनमें दुर्गा एवं अन्य देवियों के रूप में भगवती की

प्रतिष्ठापना है । उनमें विशेष पूजा–प्रतिष्ठा समारोह एवं पूजन वन्दन प्रायः नवरात्रि के समय ही होता है । लंका विजय वस्तुतः सीता विजय है । रामलीलायें भी इसी कारण इन्ही दिनों सम्पन्न होतीं हैं ।

आश्विन और चैत्र के शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से नवमी तक नौ दिन का यह पर्व मनाया जाता है । इनका सम्बन्ध तिथियों की घट–बढ़ से नहीं वरन् नौ रात्रियों से है । इसलिए उपासना क्रम पूरे नौ दिन का बनाया जाता है । तिथियों की घटबढ़ से उसमें आगा पीछा नहीं होता । इसलिये साधना के परिणाम में भी सदा समस्वरता बनी रहती है । समारोह प्रवचनों की दृष्टि से आश्विन नवरात्रि का महत्व कुछ बढ़ गया है पर तात्विक दृष्टि से चैत्र नवरात्रि का भी ठीक वैसा ही महत्व है । इतना अवश्य है कि जो वर्ष में दो बार साधना नहीं कर पाते वे आश्विन को ही प्रधानता देते हैं । वैसे नवीन सम्वत्सर और रामनवमी पर्व का समावेश रहने से चैत्री नव रात्रि का महत्व किसी प्रकार कम नहीं है । आश्विन में कार्तिकी फसल पकती है और चैत्र में वैसाखी फसल कटती है । मक्का, बाजरा, धान आदि बरसाती अनाज प्रायः इन्हीं दिनों घर में आते हैं । चैत्र में गेहूँ, जौ, चना, मटर आदि धान्य, अरहर, उड़द आदि दालें और तिल, सरसों आदि तिलहन इन्हीं दिनों उपलब्ध होते हैं । प्रकृति के अनुदानों की अन्य अनेकों सम्पदाओं का उपहार भी इन्हीं दिनों मनुष्य के हाथ में आता है । जड़ी–बूटियों की फसल इन्हीं दिनों अपनी प्रौढ़ावस्था में होती है । फूलों का बाहुल्य इन्हीं दो अवसरों में जितने बड़े परिमाण में उपलब्ध होता है उतना वर्ष के अन्य महीनों में दृष्टिगोचर नहीं होता, वन्य प्रदेशों और मनुष्यकृत उद्यानों में अधिकांश फूल इन्हीं दो फसलों पर खिलते हैं । वृक्षों को फलों से लदा हुआ इन्हीं दिनों देखा जा सकता है । शहद के छत्ते इन दिनों जितना मधुरस प्रदान करते हैं अन्य महीनों में नहीं । कन्दों की फसल भी इन्हीं दिनों उपजती है । गाजर, मूली, प्याज, आलू, शकरकन्द आदि का बाहुल्य जितना नवरात्रियों में रहता है उतना अन्य किसी समय नहीं । भूगर्भवित्ता बताते हैं कि खनिज सम्पदा धरती के अन्तराल में सदा एक समान नहीं बनती–उमगती उनके विकास परिवर्तन के ज्वार भाटे प्रायः इन्हीं दिनों आते हैं, जिन दिनों की नवरात्रियाँ होती हैं ।

दबी हुई बीमारियों को मानवी रक्त, निकाल बाहर करने के लिए इन्हीं दिनों जोर मारता है । अतएव बुखार, खाँसी, जुकाम, खुजली आदि का

दौर जितना इन दिनों रहता है उतना और किसी समय नहीं । आयुर्वेद से शरीर शोधन की कल्प चिकित्सा वर्ष में इन्हीं दो अवसरों पर होती थी, पेट और रक्त की खराबियों को दूर करने के लिए यूनानी चिकित्सा में जुलाव का एक कोर्स होता है । चिकित्सकों का कथन है कि रोगों को जड़ से काटने के लिए शरीर शोधन के पंचकर्म, वमन, विरेचन, स्वेदन, स्नेहन, आदि में जितनी सफलता इन दिनों मिलती है उतना फिर कभी ऐसा अवसर नहीं आता । आकाश भी इन दिनों अधिक निर्मल रहता है, फलतः खगोल वेत्ता अपने प्रत्यक्ष गृह गणित के लिए इसी समय की प्रतीक्षा करते रहते हैं और सारे काम छोड़कर आकाशस्थ ग्रह–नक्षत्रों पर ही नजर गढ़ाये बैठे रहते हैं ।

आध्यात्मिक साधनाओं के लिए नवरात्रियों से बढ़कर कोई विशिष्ट अवसर हो ही नहीं सकता । स्थूल प्रकृति जिस तरह भौतिक प्रगति अनुकूलतायें उगलती है ठीक उसी तरह सूक्ष्म प्रकृति में चेतनात्मक उपलब्धियों के लिए भी इन दिनों विशिष्ट अनुकूलतायें रहती हैं । साधना पर रोक कभी नहीं रहती है । सभी दिन ईश्वर के हैं और सभी उत्तम हैं, पर आत्मशोधन और आत्मोत्कर्ष के दोनों प्रयोजन पूरा करने के लिए साधना पथ पर साधक के दोनों चरण जितनी तेजी और सफलता पूर्वक इन दिनों उठते हैं वैसा अवसर सदा सर्वदा नहीं बना रहता है । यही कारण है कि इन दिनों साधना की सफलता में रुचि रखने वाले वर्ष में दो ही बार आने वाले उन पुण्य पर्वों को हाथ से नहीं जाने देते । उसकी प्रतीक्षा और तैयारी पहले से ही करते रहते हैं ।

नवरात्रि उपासना में भी अनुष्ठान में सामान्यतः २४ हजार मंत्र जप लघु अनुष्ठान वाले नियमोपनियमों का ही पालन करना होता है । पर संभव हो तो इस अवधि में उपवास के नियमों का पालन कड़ाई से किया जावे । चूँकि इस अवधि में शरीर में नई चेतना का संचार होता है इसलिए वैसे ही शरीरगत नाड़ी गुच्छक सक्रिय रहते हैं । आहार की अनियमितता से उनकी चंचलता बढ़ती है, जिससे अनुष्ठान में ब्रह्मचर्य रहने वाली अनिवार्य शर्त टूट सकती है अतएव इस अवधि में नियम में से कोई भी उपवास क्रम अपनाया जा सकता है ।

१—एक समय फल, एक समय दूध अथवा केवल फल और दूध पर ।

२—एक समय मीठा भोजन, दूसरे पहर रसदार फल या थोड़ा सा दूध–छाछ जो भी तरल पेय उपलब्ध हो सके ।

३—दोनों समय हल्का, सुपाच्य बिना नमक का भोजन ।

४—नमक और मीठा रहित अस्वाद भोजन ।

इसमें से कोई भी संगति अपने लिये बनाई जा सकती है । अनुष्ठान के अन्तिम दिन सामूहिक हवन, प्रसाद वितरण और कन्या भोजन अवश्य कराया जाना चाहिए भले ही अनुष्ठान एकाकी क्यों न किया गया हो । ब्रह्मभोज की परम्परा का निर्वाह गायत्री का प्रसाद साहित्य बाँटकर किया जावे । ऐसा साहित्य गायत्री तपोभूमि मथुरा से मँगाया जा सकता है ।

सामूहिक साधना का उपयुक्त अवसर नवरात्रि पर्व

नवरात्रि पर्व पर एकाकी अथवा पारिवारिक साधनाओं की अपेक्षा सामूहिक रूप से अनुष्ठान सम्पन्न हों तो उनकी महत्ता बहुत अधिक होती है । प्राचीन काल में ऐसे आयोजनों की सर्वत्र परम्परा थी । कहीं—कहीं आज भी नवरात्रि पर्व गाँव के गाँव मिलकर सम्पन्न करते हैं । जहाँ ये परम्परा न चलती हो वहाँ भी नवरात्रि पर्व सामूहिक रूप से पंडाल बनाकर, उसे सजा कर सम्पन्न की जानी चाहिए । सामूहिक हवन का क्रम प्रतिदिन चले तो अच्छा अन्यथा अन्तिम दिन तो रखा ही जाये ।

कुछ काम ऐसे होते हैं जो नितान्त वैयक्तिक होते हैं । दूसरों की जानकारी या भागीदारी उनमें विक्षेप उत्पन्न करती है ऐसा कोई कार्य एकान्त में ही किया जा सकता है । पर अन्य सारे काम मिलजुल कर करने होते हैं । मनुष्य की संरचना ही ऐसी है जिसमें हर महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी कार्य मिलजुल कर ही करना उपयुक्त पड़ता है । मल, मूत्र का विसर्जन, स्नान, शयन, अश्लील आचरण जैसे कुछ ही कार्य हैं जो दूसरों को अरुचि कर लगते हैं, वे एकान्त में ही किये जाते हैं । जिन जानकारियों को प्राप्त करके दूसरे अपनी हानि कर सकते हैं, ऐसे जमीन में धन गाढ़ने जैसे काम भी गोपनीय रखे जाते हैं । अच्छी योजनायें तो सबको बताई जाती हैं और उसमें सलाह परामर्श भी माँगि जाते हैं । किन्तु कोई दुरभिसन्धि रचनी हो, कुकृत्य करना हो तो उस षड़यन्त्र का दूसरों को पता नहीं चलने दिया जाता ।

उपासना का एक स्तर ऐसा भी होता है जिसमें वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षण की तरह एकान्त की आवश्यकता पड़ती है, पर वह विशेष स्थिति विरले लोगों के लिए ही कुछ ही समय के लिए आती है । सामान्यतया

भौतिक और आत्मिक प्रगति के सभी प्रयोजन मिलजुल कर करने पड़ते हैं, उन्हीं में आनन्द भी आता है, उन्हीं में सफलता मिलती है और श्रेय सम्मान भी ऐसे ही कार्यों में मिलता है, जो पारस्परिक सहयोग के साथ किये जाते हैं । उपासना के सम्बन्ध में भी यही बात है ।

सामूहिक प्रार्थना को समस्त संसार में समस्त धर्मों में सदा से महत्व दिया जाता रहा है । ईसाइयों की सामूहिक प्रार्थना रविवार के दिन गिरजे में होती है, मुसलमान मस्जिद में एकत्रित होते हैं और एक नियत समय पर, नियत विधि से मिल-जुल कर उस कृत्य को पूरा करते हैं । ईद-बकरीद जैसे पर्व सामूहिक पूजा प्रार्थना के रूप में ही सम्पन्न होते हैं । जो रोज मस्जिद नहीं जा सकते, वे सप्ताह में एकबार शुक्र को तो वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करते ही हैं । ईसाइयों में बड़े दिन जैसे पर्वों पर हँसी-खुशी अन्यान्य व्यक्तियों के साथ मिलजुल कर बड़े रूप में उपासना कृत्य सम्पन्न किया जाता है । यदि यह कार्य सब लोग अलग-अलग बैठकर करें तो आनन्द मिलना तो दूर मन लगाना तक कठिन हो जायगा ।

यहूदी, पारसी, बौद्ध आदि संसार के सभी धर्मों में उपासना पर्व मिलजुल कर ही सम्पन्न किये जाते हैं । प्राचीन काल में योग विज्ञान के कुछ अन्वेषक अपने विशिष्ट प्रयोगों और अनुसंधानों के लिए एकान्त की आवश्यकता अनुभव करते थे और वन प्रदेशों एवं कन्दराओं में चले जाते थे, पर यह प्रयोग सर्व साधारण के लिए कुछ विशेष व्यक्तियों के लिए ही आवश्यक होता है । शेष के लिए तो समूची आध्यात्म साधनाऐं भी मिलजुल कर सम्पन्न होती थीं ।

सूत शौनक सम्वादों में नैमिषारण्य आदि क्षेत्र में हजारों ऋषियों का एकत्रित होना और सत्संग क्रम चलना प्रसिद्ध है । पुराण चर्चा ऐसी ही ज्ञान गोष्ठियों में सम्पन्न होती थी । वानप्रस्थों के लिए विशाल काय आरण्यक की व्यवस्था थी । जिस प्रकार गुरुकुल में विद्यार्थी मिलजुल कर रहते और पढ़ते थे उसी प्रकार वानप्रस्थ सन्यासी भी इन आरण्यकों में निवास, अध्ययन, साधना का लाभ लेते थे । तीर्थों की रचना ही इस प्रयोजन के लिए हुई थी कि वहाँ पहुँच कर सामान्य व्यक्ति भी साधना एवं शिक्षण सत्र में सम्मिलत रहकर आत्म परिष्कार का अवसर प्राप्त कर सकें ।

उपासना भी ऐसा कृत्य है जिसमें सामूहिकता अपनाने में कहीं अधिक आनन्द मिलता है और कहीं अधिक सफलता मिलती है । मन्दिरों में आरती की परम्परा आदिकाल से चली आ रही है ।

पाठशालाओं में अध्ययन करने से पूर्व बालक सामूहिक प्रार्थना करते हैं । पर्वों का निर्माण ही इस उद्देश्य को लेकर हुआ है कि लोग मिल–जुलकर धर्म कृत्य करने का महत्व समझें । वसन्त पंचमी, शिवरात्रि, होली, रामनवमी, गंगा दशहरा, गुरुपूर्णिमा, श्रावणी, जन्माष्टमी, विजयादशमी आदि सभी पर्वों पर जगह–जगह अपने–अपने ढंग से उत्सव मनाये जाते हैं और एकत्रित लोग मिल–जुलकर परम्परागत धर्म कृत्यों को सम्पन्न करते हैं ।

मेलों का रूप अब मनोरंजन प्रधान या व्यावसायिक भले ही बन गया हो, पर उनके आरम्भ करने वालों का क्या प्रयोजन रहा है तथा अभी भी उनके पीछे मूल उद्देश्य क्या छुपा हुआ है ? इसका थोड़ी–सी गहराई में अन्वेषण करने पर एक ही तथ्य उभर कर आता है–धर्म धारणा को मिल–जुलकर प्रोत्साहित एवं परिपक्व करना ।

सामूहिक प्रयत्नों से अधिक सुविधा व्यवस्था और सफलता मिलती ही है, साथ ही सबसे बड़ी बात यह है कि मन लगा रहता है और उत्साह मिलता है । यह सोचना गलत है कि एकान्त में मन लगता है । सच तो यह है कि चित्त उचटने की उसी में अधिक कठिनाई पड़ती है । समूह में तो अन्य मनों के साथ अपना मन भी रस्से में बँधा रहता है और झुण्ड में उड़ने वाले पक्षियों की तरह एक दिशा में उड़ता रहता है, किन्तु एकाकी पखेरू, अकेला रहने वाला पशु जिस प्रकार खिन्न उद्विग्न दिखाई पड़ता है, उसी तरह एकाकी मन भी उदास, नीरस, खिन्न बना रहता है ।

सुख और दुःख मिल–बाँटकर ही भोगे जा सकते हैं । करोड़पति और समस्त साधन सम्पन्न व्यक्ति को यदि एकाकी रहने दिया जाय तो उन समस्त साधनों के रहते हुए भी उसपर उदासी ही छाई रहेगी । बिना दूसरों के सहयोग के प्रसन्नता की अनुभूति कठिन है । जंगलों में कभी–कभी कोई जानवर झुण्ड से अलग होकर एकाकी रहने लगते हैं, तो इस दुष्प्रवृत्ति को अपनाते ही उन्हें अपने समाज की सौम्य परम्पराओं से भी हाथ धोना पड़ता है । वनवासी जानता है कि इकट्ठे अकेले रहने वाले पशु कितने खतरनाक होते हैं, वे अकारण मनुष्यों तथा दूसरे पशुओं पर हमला बोलते हैं । देखते ही वनवासी उनसे पीछा छुड़ाने का काम हाथ में लेते हैं । मनुष्यों में भी इक्कड़ प्रवृत्ति जहाँ भी मिलेगी वहाँ उन लोगों में संकीर्णता, स्वार्थपरता, अनुदारता, निष्ठुरता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ भरी दिखाई देंगी, न वे किसी के काम आ रहे होंगे और न कोई उन्हें सहयोग दे रहा होगा, फलतः उन्हें सबसे और सबको उनसे शिकायत ही बनी रहेगी ।

नवरात्रि पर्व सामूहिक उपासना का पर्व है । साधना के लिये प्रकृति गत अनुकूलता एवं सूक्ष्म जगत में उन दिनों विशिष्टता का ध्यान रखते हुए इन दिनों अधिक साधना रत होने की परम्परा चली आती है । यह प्रयत्नशीलता और परिस्थिति का भली प्रकार ताल मेल मिलना है ।

नवरात्रि साधना में प्रकृतिगत-अनुकूलता की बात जितनी महत्त्वपूर्ण है उतनी ही उपयोगिता सामूहिक साधना के प्रचलन की भी है । यह पर्व सर्वत्र स्नेह सहयोग के वातावरण में मिलजुल कर ही मनाया जाता है । उत्साह और आनन्द के सभी ज्वार भाटे सहकारिता के चुम्बकत्व भरी पवन से ही उत्पन्न होते हैं । हर कोई अलग-अलग ही टंट-घण्ट करता रहे तो उतने भर से उमंगों और भाव भरी गुदगुदी का कहीं दर्शन भी न हो सकेगा ।

नवरात्रि में रामलीला, रासलीला, रामायण, सप्तशती पाठ, भागवत् पाठ, अखंड कीर्तन जैसे सामूहिक धर्मानुष्ठान चलते रहते हैं । इनसे जो वातावरण बनता है उससे जन मानस को एक दिशा विशेष में प्रभावित होने का सहज अवसर मिलता है । रामलीला के मेले में हनुमान, काली आदि के मुखौटे और तीर कमान बिकते हैं, बच्चे उन्हें बड़े चाव से खरीदते हैं और राम लक्ष्मण जैसे तीर चलाने, हनुमान काली जैसी उछल कूद करने का अभिनय करते हैं । यह आचरण किसी के कहने से नहीं अनुकरण की मानव प्रकृति के प्रभाव से स्वतः ही सम्पन्न होते हैं । ठीक इसी प्रकार अन्यान्य धर्मानुष्ठानों से भी उनके साथ जुड़ी हुई प्रेरणाओं का प्रभाव पड़ता है । जन मानस को प्रभावित करने और उसे श्रेष्ठता की दिशा में प्रभावित करने के विशेष लाभ को ध्यान में रखते हुए ही तत्वदर्शकों ने धर्मानुष्ठान की परम्परा में सामूहिकता का उल्लास जोड़ा है । यह परम्परा हर दृष्टि में दूर दर्शिता पूर्ण और उपयोगी देख कर ही आरम्भ की गई है ।

नवरात्रि के पावन पर्व पर प्राचीन काल में गायत्री उपासना का ही एक मात्र प्रसंग मिलता है । विभिन्नताऐं तो साम्प्रदायिक उन्माद की देन हैं । सनातन संस्कृति में तो पूरी तरह एक रूपता, एक निष्ठा, एक दिशा, एक लक्ष्य का ही निर्धारण था । ज्ञान और विज्ञान के आधार थे । वेद और उपासना का समूचा तत्वज्ञान और विधि-विधान गायत्री उपासना की धुरी पर परिभ्रमण करता था, उन दिनों सर्व साधारण के लिए दैनिक संध्यावन्दन के रूप में गायत्री मंत्र ही उपासना का मेरुदण्ड था । विशिष्ट

साधकों के लिए इसी कल्प वृक्ष के नीचे अभीष्ट सफलताओं की साधना का उपयुक्त आश्रय मिलता था । योगी और तपस्वी इसी अवलम्बन के सहारे अपना महामंत्र प्राप्त करते थे । देवताओं और अवतारों के लिए भी शक्ति का स्रोत यही महा यज्ञ था । तब और कुछ न तो सोचने की गुंजायश थी और न भटकाने वाली भूल भुलैया ही तब तक रची गयी थी । ऐसी दशा में सामान्य अथवा विशिष्ट उपासना में रुचि रखने वाले एक ही मार्ग पर धीमी या तेज गति से चलते थे । नवरात्रि पर्व पर जहाँ जैसी साधना–योजना बनती थी, उससे गायत्री मंत्र को केन्द्र और सामूहिक आयोजन को प्रक्रिया का अवलम्ब बनाया जाता था ।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के इस पुण्य प्रभात में हमें अपनी विस्मृत परम्पराओं को फिर से खोज निकालने और सजीव करने की आवश्यकता है । इस दृष्टि से जागृत आत्माओं को नवरात्रि पर्व और गायत्री उपासना का सामूहिक उपक्रम मिला देने का प्रयत्न करना चाहिए । विलगाव और भटकाव के जंजाल में से निकल कर निर्धारित लक्ष्य की ओर चल पड़ने का यही एक उपाय है ।

नवरात्रि के साथ दुर्गावतरण की कथा जुड़ी हुई है, असुरों से संत्रस्त देवता प्रजापति के पास जाते हैं और पूछते हैं कि हम सद्‌गुणों से सम्पन्न होते हुए भी दुष्ट असुरों से हारते क्यों हैं ? ब्रह्माजी ने सीधा उत्तर दिया–संगठन और पराक्रम के अभाव में अन्य गुण निष्प्राण ही बने रहते हैं । संकट से छूटने और वर्चस्व पाने के लिए संगठित और पराक्रमी बनने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । देवता सहमत हुए । योजना बनी और संगठित पराक्रम की देवी दुर्गा का अवतरण संभव हुआ । उन्हीं के प्रहार से तत्कालीन असुर–दानवों का पराभव संभव हुआ । आज भी वही स्थिति है । देवत्व को हारते और दैत्य को जीतते पग–पग पर देखते हैं । उसमें दैत्य की वरिष्ठता कारण नहीं वरन् तथ्य यह है कि देव पक्ष ने न तो संगठित होने की आवश्यकता समझी और न पराक्रम के हाथ दिखाये, इस भोलेपन को दैत्यों ने दुर्बलता समझा और आक्रमण का खंग निर्द्वन्द होकर चलाना शुरू कर दिया । संक्षेप में आज की विभीषिकाओं के मूल में यही एक कारण है । इसका निराकरण भी तब तक संभव न होगा जब तक कि दुर्गावतरण की पुनरावृत्ति न होगी । गायत्री जयन्ती पर उस महाशक्ति का पतित पावनी गायत्री–गंगा शक्ति का अभिनन्दन किया जाता है । नवरात्रि में उसका उत्तरार्ध सम्पन्न किया जाना चाहिए । असुर

निकन्दिनी के प्रचण्ड भर्ग को जीवित, जागृत और सक्रिय करने का ठीक यही समय है । नवरात्रि की दुर्गा पूजा से आत्म साधना के साधकों को ब्रह्मवर्चस की प्रेरणा उपलब्ध करनी चाहिए । सामूहिकता की शक्ति से बाल, वृद्ध, विज्ञ, अज्ञ सभी परिचित हैं । सींकों से मिलकर बुहारी, धागों से मिलकर रस्सा, ईंटों से मिलकर भवन बनने की बात सर्व विदित है । सिपाहियों का समूह सेना, मनुष्यों का समूह समाज कहलाता है । इसे कौन नहीं जानता । बिखरे हुए धर्म प्रेमियों को एक झण्डे के नीचे इकट्ठे और संगठित करने का प्रयास नवरात्रि की सामूहिक साधना के माध्यम से भली प्रकार सम्पन्न किया जा सकता है । बिखराव को संगठन में, उदासी को पराक्रम में बदलने की प्रेरणा नवरात्रि के नवदुर्गा के पुरातन इतिहास का अविछिन्न अंग है । पुरातन को अर्वाचीन में प्रत्यावर्तित करने के लिए नवरात्रि के साथ जुड़े हुए दुर्गावतरण के कथा प्रसंग को भली प्रकार उभारा जा सकता है । यह इसलिए आवश्यक नहीं है कि हमें अतीत की महानता उपलब्ध करनी है इसलिए भी अभीष्ट है कि संगठन और पराक्रम के बिना युग की समस्याओं का समाधान भी संभव न हो सकेगा ।

एक समय में एक उद्देश्य के लिए एक मन से जो काम किये जाते हैं उनका प्रभाव और प्रतिफल असाधारण होता है । कोई भारी चट्टान, छप्पर आदि उठाते समय मजूर एक साथ मिलकर जोर लगाने के लिए 'हेईन्शा' जैसा कोई नारा लगाते हैं । सामान्य प्रयत्नों से सामान्य गति से काम करने की अपेक्षा इस प्रकार के काम अधिक सरलता पूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं । एकसाथ जोर लगाने का परिणाम शक्ति विज्ञान का हर विद्यार्थी भली प्रकार जानता है । नवरात्रि के एक ही पर्व पर प्रातःकाल एक ही इष्ट के प्रेमीजन जब एक ही विधि से एक ही उपासना करते हैं तो इसका परिणाम सामान्य क्रम की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेयस्कर होता है ।

पुलों पर चलती हुई सेना को कदम मिलाकर चलने को मना कर दिया जाता है । एक ही समय में एक ही क्रम से बनने वाली पद यात्रा की शब्द तरंगें इतनी विचित्र होती हैं कि उनके प्रभाव से वह पुल फट या टूट तक सकता है । सामूहिक उपासना में एक ही क्रम का शब्द प्रवाह हर दृष्टि से उपयोगी होता है ।

अन्यान्य धर्मों में भी इस समय साधना को बहुत महत्व दिया गया

है । नमाज में समय पालन पर बहुत जोर दिया गया है । दौज के चन्द्रमा के दर्शन को विशेष महत्व दिया गया है । इसमें एक ही समय पर एक ही मनोवृत्ति को उभारने का प्रयत्न है । भक्ति भाव के प्रभाव में इस भौतिक समावेश का भी लाभ जुड़ जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया सूक्ष्म जगत में बहुत ही अनुकूल होती है । वातावरण बनता है और उसके प्रभाव से हर प्राणी और पदार्थ प्रभावित होता है ।

सदुद्देश्य के लिए सामूहिक प्रयत्नों की शक्ति को तत्वदर्शियों ने सदा स्वीकार किया है । अवतारों तक ने उसे अपने साथ लिया है । राम ने रीछ बानरों और गिद्ध-गिलहरियों के सहयोग का संचय किया था । गोवर्धन उठाने में कृष्ण को भी जन शक्ति साथ लेकर चलना पड़ा था, बुद्ध और गांधी की सफलताओं में जन-सहयोग का प्रत्यक्ष परिचय है । ऋषियों ने रक्त संचय करके घट भरा था और उसके द्वारा असुरों का विनाश करने की सूत्र संचालिनी सीता का जन्म हुआ था । युग परिवर्तन भी ऐसा ही अवतारी प्रयोजन है, इसमें धर्म प्रिय जागृत आत्माओं द्वारा सामूहिक साधना किये जाने की आवश्यकता है । इसकी संयुक्त शक्ति से अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में असाधारण सहायता मिलेगी । नवरात्रि सामूहिक उपासना में ऐसे ही प्रक्रिया का समावेश समझा जा सकता है ।

प्रातः काल पक्षी मिल-जुलकर चहचहाते और अरुणोदय का अभिवन्दन करते हैं । मेघ गरजने पर सभी मेघ मिलकर उनके स्वागत का जयघोष करते हैं । वसन्त में प्रायः सभी कोयलें कूकती हैं । नवयुग के इस वासन्ती प्रभाव में युग शक्ति के अवतरण का स्वागत भी जागृत आत्माओं को मिल-जुलकर ही करना चाहिए । साधना ही पुरूषार्थ है । नल-नील की तरह हमें भी युग सेतु बाँधना है उसके पत्थर और पेड़ जमा करने में हममें से किसी को भी पीछे नहीं रहना चाहिए । नवरात्रि का पुण्य पर्व इस प्रयोजन के लिए सब में महत्वपूर्ण और उपयुक्त समय है । उसमें सामूहिक साधना के रूप में हम सबको अपने आध्यात्मिक पुरुषार्थ का समन्वय करना ही चाहिए ।

गायत्री अभियान साधना

विशेष साधना के रूप में चौबीस हजार एवं सवालक्ष के अनुष्ठान बहुधा लोग कर लेते हैं । इसमें आगे का २४ लक्ष का पुरश्चरण लोगों को कठिन पड़ता है । उसमें नित्य लगभग ६ घंटे साधना में लगाने पड़ते

हैं । इतना समय सामान्य रूप से निकाल पाना कठिन होता है । जो साधक लम्बी अवधि का साधना संकल्प करना चाहें और प्रतिदिन घंटे दो घंटे से अधिक समय लगाने की स्थिति में न हों उनके लिये एक वर्षीय 'गायत्री अभियान साधना' बहुत उपयुक्त रहती है । इसके अन्तर्गत एक वर्ष में निर्धारित तपश्चर्याओं के साथ ५ लक्ष गायत्री मंत्र जप पूरा किया जाता है ।

इस साधना अभियान में जप संख्या बहुत अधिक नहीं होती, फिर भी दीर्घकालीन श्रद्धा भरा साधना क्रम साधक के आन्तरिक उत्कर्ष की दृष्टि से बहुत महत्व पूर्ण है । यह एक वर्ष की तपश्चर्या साधक को उपासनीय महा शक्ति से तदात्म्य करा देती है । श्रद्धा और विश्वास पूर्वक की हुई अभियान की साधना अपना फल दिखाये बिना नहीं रहती । "अभियान" एक ऐसी तपस्या है, जो साधक को गायत्री शक्ति से भर देती है । फलस्वरूप साधक अपने अन्दर, बाहर तथा चारों ओर एक दैवी वातावरण का अनुभव करता है ।

एक वर्ष में पाँच लाख जप पूरा करने का अभियान किसी भी मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से प्रारम्भ किया जा सकता है । गायत्री का आविर्भाव शुक्ल पक्ष की दशमी को मध्य रात्रि में हुआ है, इसलिए उसका उपवास दूसरे दिन एकादशी को माना जाता है । अभियान प्रारम्भ करने के लिए यही मुहूर्त सबसे उत्तम है । जिस एकादशी से आरम्भ किया जाय, एक वर्ष बाद उसी एकादशी को समाप्त करना चाहिए ।

महीने की दोनों एकादशियों को उपवास करना चाहिए । उपवास में दूध, दही, छाछ, शाक आदि सात्विक पदार्थ लिये जा सकते हैं । जो एक समय भोजन करके काम चला सकें, वे वैसा करें । बाल, वृद्ध, गर्भिणी या कमजोर प्रकृति के व्यक्ति दो बार भी सात्विक आहार ले सकते हैं । उपवास के दिन पानी कई बार पीना चाहिए ।

दोनों एकादशियों को २४ मालायें जपनी चाहिए । साधारण दिनों में प्रतिदिन १० मालायें जपनी चाहिए । वर्ष में तीन संध्यायें होती हैं, उन्हें नवरात्रियाँ कहते हैं । इन नवरात्रियों में से चौबीस-चौबीस हजार के तीन अनुष्ठान कर लने चाहिए । जैसे प्रतिदिन प्रातःकाल, मध्यान्ह, सायंकाल की तीन संध्यायें होती हैं, वैसे ही वर्ष में ऋतु परिवर्तनों की संधियों में तीन नवरात्रियाँ होती हैं । वर्षा के अन्त और शीत के आरम्भ में आश्विन शुक्ला १ से लेकर ९ तक । शीत के अन्त और ग्रीष्म के

आरम्भ में चैत्र शुक्ला १ से लेकर ९ तक। ग्रीष्म के अन्त और वर्षा के आरम्भ में ज्येष्ठ शुक्ला १ से लेकर ९ तक । यह तीन नवरात्रियाँ हैं । दशमी गायत्री जयन्ती को पूर्णाहुति का दिन होने से वह भी नवरात्रियों में जोड़ दिया गया है । इस प्रकार दस दिन की इन संध्याओं में चौबीस माला प्रतिदिन के हिसाब से चौबीस हजार जप हो जाते हैं । इस प्रकार एक वर्ष में पाँच लाख जप पूरा हो जाता है ।

संख्या का हिसाब इस प्रकार और भी अच्छी तरह समझ में आ सकता है ।

(१) बारह महीने की चौबीस एकादशियों को प्रतिदिन २४ मालाओं के हिसाब से २४ × २४ = ५७६ माला ।

(२) दस-दस दिन की नरात्रियों में प्रतिदिन की २४ मालाओं के हिसाब से ३० × २४ = ७२० माला ।

(३) वर्ष के ३६० दिनों में से उपरोक्त ३० + २४ = ५४ काटकर शेष ३०६ दिनों में १० माला प्रतिदिन के हिसाब से ३०६० माला ।

(४) प्रति रविवार को पाँच मालायें अधिक जपनी चाहिए अर्थात् १० की जगह पन्द्रह माला रविवार को जपी जायें । इस प्रकार एक वर्ष की ५२ × ५ = २६० मालायें ।

इस प्रकार कुल मिलाकर (५७६+७२०+३०६०+२६०=४६१६ मालायें हुई) एक माला में १०८ दाने होते हैं । मालायें ४६१६×१०८=४,९८,५२८ कुल जप हुआ पाँच लाख में करीब उन्नीस सौ कम हैं । चौबीस मालायें पूर्णाहुति के अन्तिम दिन विशेष जप एवं हवन करके पूरी की जाती हैं ।

इस प्रकार पाँच लाख जप पूरे हो जाते हैं । तीन नवरात्रियों में काम सेवन, पलंग पर सोना, दूसरे व्यक्ति से हजामतें बनवाना, चमड़े का जूता पहनना, मद्य मांस सेवन आदि विशेष रूप से वर्जित हैं । शेष दिनों में सामान्य व्रत रखा जा सकता है, उसमें किसी विशेष तपश्चर्या का प्रतिबन्ध नहीं है ।

इस अभियान साधना को पूरा करने की और भी विधियाँ हैं । पहली विधि तो ऊपर बताई जा चुकी है दूसरी विधि में साधारणतया ११ माला प्रतिदिन और रविवार या अन्य अवकाश के दिन २४ मालायें करनी होती हैं । यदि अवकाश के दिन अधिक न करनी हों तो ५ लाख को ३६० दिनों में बराबर विभाजन करने पर प्रायः १४ माला का हिसाब बन जाता है । वर्ष में ५ लाख का जप इसी क्रम में पूरा करना आसान हो जाता है । इसमें अपनी सुविधा का क्रम भी निर्धारित हो सकता है पर वह चलना नियमित रूप से ही चाहिए । वर्ष पूरा हो जाने पर उसकी

पूर्णाहुति का हवन करा दिया जाय । इसमें एक हजार आहुति से कम न हो । हर महीने पर, हर सप्ताह हवन का क्रम चलाने में सुविधा हो तो वह और भी उत्तम है । अभियान साधना में ब्रह्मचर्य, उपवास, भूमिशयन आदि तपश्चर्या अनिवार्य तो नहीं है, पर उसका जितना अधिक पालन–निर्वाह हो सके उतना उत्तम है । अभियान साधना में किसी दिन व्यतिक्रम हो तो उसकी पूर्ति अगले दिनों कर लेनी चाहिए । किन्तु इन व्यतिक्रमों का प्रायश्चित करने के लिये दस मालायें अतिरिक्त जपनी चाहिए ।

अभियान एक प्रकार का लक्ष्य वेध है । इसके लिए किसी पथ प्रदर्शक एवं शिक्षक की नियुक्ति आवश्यक है, जिससे कि बीच–बीच में जो अनुभव हों उनके सम्बन्ध में परामर्श किया जाता रहे । कई बार जबकि प्रगति में बाधा उपस्थित होती है तो उसका उपाय अनुभवी मार्गदर्शक से जाना जा सकता है । एकाकी यात्रा की अपेक्षा विश्वसनीय पथ प्रदर्शक की सहायता सदा ही लाभदायक सिद्ध होती है ।

गायत्री की उद्यापन साधना

गायत्री एक अत्यन्त ही उच्च कोटि का आध्यात्मिक विज्ञान है । उसके द्वारा अपने मानसिक दोष–दुर्गुणों को हटाकर अन्तः करण को निर्मल बनाया जाता है और यह हर किसी के लिये बहुत ही सहज है । इसके अतिरिक्त यदि गहरे आध्यात्मिक क्षेत्र में उतरा जाये तो अनेक प्रकार की चमत्कारी ऋद्धि–सिद्धियाँ उपलब्ध हो सकती हैं । भौतिक दृष्टि से सकाम कामनाओं के लिए सांसारिक कठिनाइयों का समाधान करने तथा सुख सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए भी महत्त्व पूर्ण सहायता ली जा सकती हैं । इन साधनाओं में से बहुत का उल्लेख पिछले पृष्ठों पर किया जा चुका है ।

विशेष आत्मिक शक्ति अर्जित करने के लिए अधिक समय लगाना पड़ता है । कई व्यक्तियों की स्थिति ऐसी होती है कि वे थोड़ा सा भी समय नहीं निकाल पाते । उनका जीवन क्रम बड़ा अस्त–व्यस्त होता है और वे सदा कार्य व्यस्त रहते हैं । व्यावहारिक जीवन की कठिनाइयाँ उन्हें चैन नहीं लेने देतीं । जीविका कमाने में, सामाजिक व्यवहारों को निभाने में, पारिवारिक उत्तरदायित्व पूरा करने में, उलझी हुई परिस्थितियों को सुलझाने में, कठिनाइयों के निवारण की चिन्ता में उनके समय और शक्ति का इतना व्यय हो जाता है कि जब फुरसत मिलने की घड़ी आती है तब वे अपने को थका–माँदा, शक्ति हीन, शिथिल और परिश्रम

के भार से चकनाचूर पाते हैं । उस समय उनकी एक ही इच्छा होती है कि उन्हें चुपचाप पड़े रहने दिया जाय, कोई उन्हें छेड़े नहीं ताकि वे सुस्ता कर अपनी थकान उतार सकें । कई व्यक्तियों का शरीर एवं मस्तिष्क अल्प शक्ति वाला होता है, मामूली दैनिक कार्यों के श्रम में ही वे अपनी शक्ति खर्च कर देते हैं, फिर उनके हाथ पैर शिथिल हो जाते हैं ।

साधारणतः सभी आध्यात्मिक साधनाओं के लिए और विशेष कर गायत्री–साधना के लिए उत्साहित मन एवं शक्ति–सम्पन्न शरीर की आवश्यकता होती है ताकि स्थिरता, दृढ़ता, एकाग्रता और शान्ति के साथ मन साधना में लग सके । इसी स्थिति में की गयी साधनायें सफल होती हैं । परन्तु कितने लोग हैं जो ऐसी स्थिति को उपलब्ध कर पाते हैं । अस्थिर, अव्यवस्थित चित्त किसी प्रकार साधना में जुटाया जाय तो उससे वैसा परिणाम नहीं निकल पाता, जैसा कि निकलना चाहिए । अधूरे मन से की गयी उपासना भी अधूरी होती है और उसका फल भी वैसा ही अधूरा मिलता है ।

ऐसे स्त्री पुरुषों के लिए एक अति सरल एवं बहुत महत्वपूर्ण साधना 'गायत्री–उद्यापन' है । इसे बहुधन्धी काम काजी और कार्य व्यस्त व्यक्ति भी कर सकते हैं । कहते हैं कि बूँद–बूँद जोड़ने से धीरे–धीरे घड़ा भर जाता है । थोड़ी–थोड़ी आराधना करने से कुछ समय में एक बड़े परिमाण में साधना–शक्ति जमा हो जाती है ।

प्रतिमास अमावस्या और पूर्णमासी दो रोज उद्यापन की साधना करनी पड़ती है । किसी मास की पूर्णमा से इसे आरम्भ किया जा सकता है । ठीक एक वर्ष बाद इसी पूर्णमासी को उसकी समाप्ति करनी चाहिए । प्रति अमावस्या और पूर्णमासी को निम्न कार्य क्रम होना चाहिए और इन नियमों का पालन करना चाहिए ।

(१) गायत्री उद्यापन के लिए कोई सुयोग्य, सदाचारी, गायत्री विद्या का ज्ञाता ब्राह्मण वरण करके उसे ब्रह्मा नियुक्त करना चाहिए ।

(२) ब्रह्मा को उद्यापन आरम्भ करते समय अन्न, वस्त्र, पात्र और यथा सम्भव दक्षिणा देकर इस यज्ञ के लिए वरण करना चाहिए ।

(३) प्रत्येक अमावस्या व पूर्णमासी को साधक की तरह ब्रह्मा भी अपने निवास स्थान पर रहकर यजमान की सहायता के लिए उसी प्रकार की साधना करें । यजमान और ब्रह्मा को एक समान नियमों का पालन करना चाहिए, जिससे उभयपक्षीय साधनायें मिलकर एक सर्वांगपूर्ण साधना प्रस्तुत हो ।

(४) उस दिन ब्रह्मचर्य से रहना आवश्यक है ।

(५) उस दिन उपवास रखें । अपनी स्थिति और स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए एक बार एक अन्न का आहार, फलाहार, दुग्धाहार या इनके मिश्रण के आधार पर उपवास किया जा सकता है । तपश्चर्या एवं प्रायश्चित प्रकरण में इस सम्बन्ध में बिस्तृत बातें लिखी जा चुकी हैं ।

(६) तपश्चर्या प्रकरण में जो नियम, व्रत पालन किये जा सकें, उनका यथा सम्भव पालन करना चाहिए । उस दिन पुरुषों को हजामत बनाना, स्त्रियों को सुसज्जित चोटी गूँथना वर्जित है ।

(७) उस दिन प्रातः काल नित्य कर्म से निवृत्त हो कर स्वछता पूर्वक साधना के लिए बैठना चाहिए । गायत्री सन्ध्या करने के उपरान्त गायत्री की प्रतिमा का पूजन धूप, दीप, चावल, पुष्प, चन्दन, रोली, जल, मिष्ठान से करें । तदुपरान्त यजमान इस उद्यापन के ब्रह्मा का ध्यान करके मन ही मन उसे प्रणाम करे और ब्रह्मा यजमान का ध्यान करते हुए उसे आशीर्वाद दे । इसके पश्चात् गायत्री मंत्र का जप आरम्भ करे । एक हजार मंत्र का जप करने के लिये दस मालायें फेरनी चाहिए । एक मिट्टी के पात्र में अग्नि रख कर उसमें घी मिली हुई धूप डालता रहे, जिससे यज्ञ जैसी सुगन्ध उमड़ती रहे साथ ही घी का दीपक जलता रहे ।

(८) जप पूरा होने पर कपूर या घ्रत की बत्ती जलाकर आरती करे । आरती के उपरान्त भगवती को मिष्ठान का भोग लगावें और उसे प्रसाद की तरह समीपवर्ती लोगों में बाँट दें ।

(९) पात्र के जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ्य रूप से चढ़ा दें ।

(१०) यह सब कृत्य लगभग दो घण्टे में पूरा हो जाता है, पन्द्रह दिन बाद इतना समय निकाल लेना कुछ कठिन बात नहीं है । जो अधिक कार्य व्यस्त व्यक्ति हैं वे दो घण्टे तड़के उठकर सूर्योदय तक अपना कार्य समाप्त कर सकते हैं । सन्ध्या को यदि समय मिल सके तो थोड़ा बहुत उस समय भी साधारण रीति से कर लेना चाहिए । सन्ध्या पूजन आदि की आवश्यकता नहीं । प्रातः और सायं का एक समय पूर्व निश्चित होना चाहिए, जिस पर यजमान और ब्रह्मा साथ-साथ साधना कर सकें ।

(११) यदि किसी बार बीमारी, सूतक, आकस्मिक कार्य आदि के कारण साधना न हो सके तो दूसरी बार दूना करके क्षति पूर्ति कर लेनी चाहिए या यजमान का कार्य ब्रह्मा या ब्रह्मा का कार्य यजमान पूरा कर दे ।

(१२) अमावस्या, पूर्णमासी के अतिरिक्त भी गायत्री का जप चालू रखना चाहिए, अधिक न बन पड़े तो स्नान के उपरान्त या स्नान करते समय कम से कम चार मंत्र मन ही मन अवश्य जप लेना चाहिए ।

(१४) उद्यापन पूरा होने पर उसी पूर्णमासी को गायत्री पूजन हवन तथा जप और कन्या भोजन कराना चाहिए । लोगों को गायत्री सम्बन्धी छोटी या बड़ी पुस्तकें दक्षिणा में देना चाहिए । द्रव्य दान की अपेक्षा ज्ञान दान का पुण्य फल सौ गुना अधिक है । इस युग में तो दान के उपयुक्त पात्र बहुत कम मिलते हैं । अधिकांश प्राप्त दान का दुरुपयोग करते हैं अतः ज्ञान दान ही सर्वोपरि माना जाना चाहिए ।

मंत्र लेखन साधना

गायत्री साधना मनुष्य मात्र के लिए सुलभ है और यह है भी अन्य सभी उपासनाओं में श्रेष्ठ और शीघ्र फल दायी । शब्द विज्ञान, स्वर शास्त्र की सूक्ष्म धारायें गायत्री महा मंत्र में जिस विज्ञान सम्मत ढंग से मिली हुई हैं, वैसा संगम अन्य किसी मंत्र में नहीं हुआ है । साधनारत योगियों और तपस्वियों ने अपने प्रयोग परीक्षणों और अनुभवों के आधार पर जो तुलनात्मक उत्कृष्टता देखी है उसी से प्रभावित होकर उन्होंने इस महाशक्ति की सर्वोपरि स्थिति बताई है । यह निष्कर्ष अभी भी जहाँ का तहाँ है । मात्र जप पूजन से तो नहीं, अभीष्ट साधना प्रक्रिया अपनाते हुए कभी भी कोई इस साधना को कर सके तो उसका निजी अनुभव शास्त्र प्रतिपादित सर्वश्रेष्ठता का समर्थन ही करेगा । शास्त्रों में पग–पग पर गायत्री महा मंत्र की महत्ता प्रतिपादित है ।

देव्युपनिषद, स्कन्द पुराण, ब्रह्म सन्ध्या भाष्य, उशनः संहिता, विश्वामित्र कल्प के पन्ने गायत्री जप की महिमा से भरे पड़े हैं, देवी भागवत में तो एक मेव भगवती गायत्री की माया का सुविस्तृत वर्णन है । गायत्री जप से सांसारिक कष्टों से मुक्ति तो मिलती ही है गायत्री की सिद्धियाँ मनुष्य को अनेक प्रकार की भौतिक और दैवी सम्पदाओं से विभूषित कर देती है ।

जहाँ उसका इतना महत्व और पुण्य प्रभाव है वहाँ कुछ नियम, बन्धन और मर्यादायें भी हैं । गायत्री उपासना का एक नाम 'संध्या वन्दन भी है । जिसका अर्थ है–'दो प्रहरों के सन्धिकाल में की गयी उपासना'–अर्थात् गायत्री उपासना के परिणाम सुनिश्चित करने के लिए

नियम बद्ध जप, उपासना भी आवश्यक है । आज की परिस्थितियाँ एसी हैं कि हर किसी को प्रातः सायं का समय जप के लिये मिल ही जाये यह आवश्यक नहीं । रात को ड्यूटी करने वालों, महिलाओं, देर तक बैठने की जिनकी स्थिति नहीं उनके लिए नियमित उपासना की सुविधा कैसे हो सकती है ? इसका अर्थ हुआ कि ऐसे लोगों का माँ के अनुग्रह से वंचित रहना । मनीषियों ने उस कठिनाई के समाधान के लिये मंत्र लेखन साधना का मार्ग निकाला । जिन्हें वेष, भूसा, आजीविका के बन्धनों के कारण या ऐसे ही किन्हीं अपरिहार्य कारणों से जप की व्यवस्था न हो सके वे गायत्री मंत्र लेखन अपना कर आत्म कल्याण का मार्ग ठीक उसी तरह प्रशस्त कर सकते हैं । इसके लिये पृथक उपासना गृह, वेष–भूषा स्थान वाली मर्यादाओं में भी छूट रखी गयी है । पवित्रता के आधार का परित्याग तो नहीं किया जाता पर स्वच्छता पूर्वक कहीं भी किसी भी समय बैठकर कोई भी मंत्र लेखन साधना वैसी ही शास्त्र सम्मत और फलप्रद बताई गयी है ।

मानवो लभते सिद्धि कारणाद्धिजपस्यवे ।
जपनो मन्त्र लेखस्य महत्वं तु विशिष्यते ।।

अर्थात्–जप करने से मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त होती है किन्तु जप से भी मन्त्र लेखन का विशेष महत्व है ।

यज्ञात्प्राण स्थितिमंत्रे जपन्मन्त्रस्यजाग्रति ।
अति प्रकाशवांश्चैव, मन्त्रोभवतिलेखनात् ।।

अर्थ–यज्ञ से मन्त्रों में प्राण आते हैं, जप से मन्त्र जागृत होता है और लेखन से मन्त्र की शक्ति आत्मा में प्रकाशित होती है ।

सिद्धेमार्गो अनेकस्यु साधनायास्तु सिद्धये ।
मंत्राणांलेखनं चैव तत्र श्रेष्ठं विशेषतः ।।

साधना से सिद्धि के अनेक मार्ग हैं इसमें भी मंत्र लेखन ही विशेष श्रेष्ठ है ।

श्रद्धया यदि वै शुद्धं क्रियतंमन्त्र लेखनम् ।
फल तर्हि भवेतस्यजपात् दशाः गुणाधिकम् ।।

अर्थ–यदि श्रद्धा पूर्वक शुद्ध मंत्र लिखे जायें तो जप से दस गुना फल देते हैं । "गायत्री लेखस्य विधानाच्छृद्धाऽन्वहम्" (नित्य प्रति श्रद्धा पूर्वक गायत्री मन्त्र लिखने से वेदमाता गायत्री साधक पर अधिकाधिक प्रसन्न होती हैं ।)

मन्त्र जप के समय हाथ की माला के मनके फिराने वाली उँगलियाँ और उच्चारण करने वाली जिह्वा ही प्रयुक्त होती है किन्तु मन्त्र लेखन में हाथ, आँख, मन, मस्तिष्क आदि अवयव व्यस्त रहने से चित्त वृत्तियाँ अधिक एकाग्र रहती हैं । तथा मन भटकने की सम्भावनायें अपेक्षाकृत कम होती हैं । मन को वश में करके, चित्त को एकाग्र करके मन्त्रलेखन किया जाय तो अनुपम लाभ मिलता है । इसी कारण मन्त्र लेखन को बहुत महत्व मिला है ।

मन्त्र लेखन के लिए गायत्री तपोभूमि, मथुरा द्वारा १००० मन्त्र लेखन की सुन्दर पुस्तिकाऐं विशेष रूप से तैयार कराई गयी हैं । सस्ते मूल्य की यह पुस्तकायें वहाँ से मँगाई जा सकती हैं । या फिर बाजार में मिलने वाली कापियों का प्रयोग भी किया जा सकता है । गायत्री तपोभूमि से एक या दो पुस्तिकायें मँगाने में डाक खर्च अधिक लगता है । अतएव ऐसे कई लोग मिलकर इकट्ठे पच्चीस–पचास प्रतियाँ मँगायें । यज्ञायोजकों को भी अपेक्षित संख्या में मन्त्र लेखन पुस्तिकायें स्वयं मँगाकर मन्त्र साधना के इच्छुक भागीदारों को वितरित करनी चाहिए ।

मन्त्र लिखी पुस्तिकायें प्राण प्रतिष्ठा हुई मूर्ति की तरह हैं जिन्हें किसी भी अपवित्र स्थान में नहीं फेंक देना चाहिए । यह न केवल श्रद्धा का अपमान है, अपितु एक प्रकार की उपेक्षा भी है । प्राण प्रतिष्ठित मूर्तियों को भी विधिवत् पवित्र तीर्थ स्थलों में प्रवाहित करने का विधान है । वही सम्मान इन पुस्तिकाओं को दिया जाता है । जिनके यहाँ इन्हें स्थापित करने के उपयुक्त पवित्र स्थान न हों, यह पुस्तिकायें गायत्री तपोभूमि मथुरा भेज देना चाहिए । वहाँ इन मन्त्र लेखनों का प्रतिदिन प्रातः सायं विधिवत् आरती पूजन सम्पन्न करने की व्यवस्था है ।

मन्त्र लेखन साधना में जप की अपेक्षा कुछ सुविधा रहती है । इसमें षट्कर्म आदि नहीं करने पड़ते । किये जायें तो लाभ विशेष होता है, किन्तु किसी भी स्वच्छ स्थान पर, हाथ मुँह धोकर, धरती पर, तखत या मेज–कुर्सी पर बैठ कर भी मन्त्र लेखन का क्रम चलाया जा सकता है । स्थूल रूप कुछ भी बने पर किया जाना चाहिए परिपूर्ण श्रद्धा के साथ । पूजा स्थली पर आसन पर बैठ कर मन्त्र लेखन जप की तरह करना सबसे अच्छा है । मन्त्र लेखन की कॉपी की तरह यदि उस कार्य के लिए कलम भी पूजा उपकरण की तरह अलग रखी जाय तो अच्छा है । सामान्य क्रम भी लाभकारी तो होता ही है ।

महिलाओं के लिए कुछ विशेष अनुष्ठान

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक संवेदनशील होती हैं फलस्वरुप सामान्य सी पीड़ा में ही वे उद्विग्न हो उठती हैं । बच्चों के दुःख कष्ट पतियों के मंगल की उन्हें हर घड़ी चिन्ता बनी रहती है । हमारे देश में नारी जाति का जीवन वैसे ही बहुत उपेक्षित सा है । कन्याओं के विवाह के समय अभिभावकों को जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनमें स्वभावतः बच्चियाँ आत्महीनता का अनुभव करती हैं । दुर्भाग्य से यदि कहीं उनके सिर का आश्रय समाप्त हो जाये तब तो उन पर विपत्ति का पहाड़ ही टूट पड़ता है ।

ऐसे अवसरों पर भगवती गायत्री के अनुष्ठान पुरश्चरण उनके लिए कितने कल्याण कारक होते हैं, इस बात का अध्ययन हम लम्बे अर्से से करते आ रहे हैं । दीर्घकालीन अनुभवों से हमें यह विश्वास हो गया कि पुरुषों द्वारा सम्पन्न अनुष्ठानों की अपेक्षा नारियों की गायत्री साधनाऐं अधिक शीघ्र सफल होती है । स्त्रियों के लिए कुछ विशेष अनुष्ठान यहाँ दिये जा रहे हैं, जिनका वे समय पर उपयोग कर सकती हैं, उससे उन्हें ब्रह्मचर्य तो मिलता ही है कष्ट-कठिनाइयों से भी छुटकारा मिलता है ।

विविध प्रयोजनों के लिए कुछ साधनायें नीचे दी जाती हैं-

मनो-निग्रह और ब्रह्म-प्राप्ति के लिए-

विधवा बहिनें आत्म-संयम, सदाचार, विवेक, ब्रह्मचर्य पालन, इन्द्रिय-निग्रह एवं मन को वश में करने के लिए गायत्री साधना का ब्रह्मास्त्र के रूप में प्रयोग कर सकती हैं । जिस दिन से यह साधना आरम्भ की जाती है, उसी दिन से मनमें शान्ति, स्थिरता, सद्‌बुद्धि और आत्म-संयम की भावना पैदा होती है । मन पर अपना अधिकार होता है, चित्त की चंचलता नष्ट होती है, विचारों में सतोगुण बढ़ जाता है । इच्छाऐं, रुचियाँ, क्रियाऐं, भावनाऐं सभी सतोगुणी, शुद्ध और पवित्र रहने लगती हैं । ईश्वर-प्राप्ति, धर्म-रक्षा, तपश्चर्या, आत्म-कल्याण और ईश्वर आराधना में मन विशेष रूप से लगता है । धीरे-धीरे उसकी साध्वी, तपस्विनी, ईश्वर-परायण एवम् ब्रह्मवादिनी जैसी स्थिति हो जाती है, गायत्री के वेष में भगवान का उसे साक्षात्कार होने लगता है और ऐसी आत्म-शान्ति मिलती है, जिसकी तुलना में सधवा रहने का सुख उसे नितान्त तुच्छ दिखाई पड़ता है ।

प्रातःकाल ऐसे जल से स्नान करे जो शरीर को सह्य हो, अति शीतल

या अति उष्ण जल स्नान के लिए अनुपयुक्त हैं । वैसे तो सभी के लिए विशेष रूप से असह्य तापमान का जल स्नान के लिए हानिकारक है ।

स्नान के उपरान्त गायत्री साधना के लिये बैठना चाहिए । पास में जल का भरा हुआ पात्र रहे । जप के लिए तुलसी की माला और बिछाने के लिए कुशासन ठीक है । वृषभारूढ़ श्वेत वस्त्र धारी, चतुर्भुजी, प्रत्येक हाथ में माला, कमण्डल, पुस्तक और कमल–पुष्प लिए हुए, प्रसन्न मुख प्रौढ़ावस्था गायत्री का ध्यान करना चाहिए । ध्यान सद्गुणों की वृद्धि के लिए, मनो–निग्रह के लिए, बड़ा लाभदायक है ।

कुमारियों के लिए आशाप्रद भविष्य की साधना

कुमारी कन्यायें अपने विवाहित जीवन में सब प्रकार की सुख शान्ति की प्राप्ति के लिए भगवती की उपासना कर सकती हैं । पार्वती जी ने मन चाहा वर पाने के लिए नारदजी के आदेशानुसार तप किया था और वे अन्त में सफल मनोरथ हुई थीं । सीताजी ने मनोवांछित पति पाने के लिए गौरी (पार्वती) की उपासना की थी । नवदुर्गाओं में आस्तिक घरानों की कन्यायें भगवती की आराधना करती हैं, गायत्री की उपासना उनके लिए सब प्रकार मंगलमय है ।

गायत्री का चित्र, प्रतिमा अथवा मूर्ति को किसी छोटे आसन या चौकी पर स्थापित करके उसकी पूजा वैसे ही करनी चाहिए, जैसे अन्य देव प्रतिमाओं की, की जाती है । प्रतिमा के आगे एक छोटी तस्वीर रख लेनी चाहिए और उसी स्तर पर चन्दन, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य, पुष्प, जल, भोग आदि पूजा सामग्री चढ़ानी चाहिए, आरती करनी चाहिए, मूर्ति के मस्तक पर चन्दन लगाया जा सकता है, पर यदि चित्र है तो उसके चन्दन आदि नहीं लगाना चाहिए, जिससे उसमें मैलापन न आवे । नेत्र बन्द करके ध्यान करना चाहिए और मन ही मन कमसे कम चौबीस मन्त्र गायत्री के जपने चाहिए । गायत्री का चित्र या मूर्ति अपने यहाँ प्राप्त न हो सके तो इसके लिए गायत्री तपोभूमि मथुरा को लिखना चाहिए । इस प्रकार की गायत्री–साधना कन्याओं को उनके लिए अनुकूल वर, अच्छा घर तथा सौभाग्य प्रदान करने में सहायक होती है ।

सधवाओं के लिए मंगलमयी साधना–

अपने पतियों को सुखी, समृद्ध, स्वस्थ, प्रसन्न, दीर्घजीवी बनाने के लिए सधवा स्त्रियों को गायत्री की शरण लेनी चाहिए । इससे पतियों के बिगड़े हुए स्वभाव, विचार और आचरण शुद्ध होकर इनमें ऐसी सात्विक बुद्धि

आती है कि वे अपने ग्रस्थ जीवन के कर्तव्य–धर्मों को तत्परता एवं प्रसन्नतापूर्वक पालन कर सकें । इस साधना से स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा स्वभाव में एक ऐसा आकर्षण पैदा होता है जिससे वे सभी को परम प्रिय लगती हैं और उनका चमुचित सत्कार होता है । अपना बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य, घर के अन्य लोगों का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य, आर्थिक तंगी, दरिद्रता, बढ़ा हुआ खर्च, आम्दनी की कमी, पारिवारिक क्लेश, मन मुटाव, आपसी राग–द्वेष एवं बुरे दिनों के उपद्रव को शान्त करने के लिए महिलाओं को गायत्री उपासना करनी चाहिए । पिता के कुल एवं पतिकुल दोनों ही पक्षों के लिए यह साधना उपयोगी है पर सधवाओं की उपासना विशेष रूप से पति कुल के लिए ही लाभदायक होती है ।

प्रातःकाल से लेकर मध्यान्ह्काल तक उपासना कर लेनी चाहिए । जब तक साधना न की जाय भोजन नहीं करना चाहिए । हाँ जल पिया जा सकता है । शुद्ध शरीर, मन और शुद्ध वस्त्र से पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए । केशर डालकर चन्दन अपने हाथ से घिसे और मस्तक, हृदय तथा कण्ठ पर तिलक छापे के रूप में लगावे । तिलक छोटे से छोटा भी लगाया जा सकता है, गायत्री की मूर्ति या चित्र की स्थापना करके उसकी विधिवत पूजा करे । पीले रंग का पूजा के सब कार्यों में प्रयोग करें । प्रतिमा का आवरण पीले वस्त्रों का रखें । पीले पुष्प, पीले चावल, बेसनी लड्डू आदि पीले पदार्थ का भोग, केशर मिले चंदन का तिलक, आरती के लिए पीला घृत न मिले तो उसमें केशर मिला कर पीला कर लेना चाहिए, चन्दन का चूरा, धूप इस प्रकार पूजा में पीले रंग का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए । नेत्र बन्द करके पीतवर्ण आकाश में पीले सिंह पर सवार, पीत वस्त्र पहने गायत्री का ध्यान करना चाहिए । पूजा के समय सब वस्त्र पीले न हो सकें तो कम से कम एक वस्त्र अवश्य पीला होना चाहिए । इस प्रकार पीतवर्ण गायत्री का ध्यान करते हुए कम से कम २४ मन्त्र गायत्री के जपने चाहिए । जब अवसर मिले, तभी मन ही मन भगवती का ध्यान करती रहें । महीने की हर एक पूर्णमासी को व्रत रखना चाहिए । अपने नित्य आहार में एक चीज पीले रंग की अवश्य ले लें । शरीर पर कभी–कभी हल्दी की उवटन कर लेना अच्छा है । यह पीतवर्ण साधना दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए परम उत्तम है ।

सन्तान सुख देने वाली उपासना

जिनकी सन्तान बीमार रहती है, अल्प आयु में ही मर जाती है, केवल पुत्र या कन्यायें ही होती हैं, गर्भपात हो जाते हैं, गर्भ स्थापित ही नहीं होता, बन्ध्या दोष लगा हुआ है, अथवा सन्तान दीर्घसूत्री, आलसी, मंद-बुद्धि, दुर्गुणी, आज्ञा उल्लंघनकारि, कटुभाषी या कुमार्ग गामी है, वे वेदमाता गायत्री की शरण में जाकर इन कष्टों से छुटकारा पा सकती हैं । हमारे सामने ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जिनमें स्त्रियों ने वेदमाता गायत्री के चरणों में अपना अञ्चल फैलाकर सन्तान-सुख माँगा है और भगवती ने उन्हें वह प्रसन्नता पूर्वक दिया है । माता के भण्डार में किसी वस्तु की कमी नहीं है, उनकी कृपा को पाकर मनुष्य दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु प्राप्त कर सकता है कोई वस्तु ऐसी नहीं जो माता की कृपा से प्राप्त न हो सकती हो, फिर सन्तान सुख जैसी साधारण बात की उपलब्धि में कोई अड़चन नहीं हो सकती ।

जो महिलायें गर्भवती हैं, वे प्रातः सूर्योदय से पूर्व या रात्रि को सूर्य अस्त के पश्चात् अपने गर्भ में गायत्री के सूर्य सदृश प्रचण्ड तेज का ध्यान किया करें और मन ही मन गायत्री जपें तो उनका बालक तेजस्वी, बुद्धिमान, चतुर, दीर्घजीवी तथा यशस्वी होता है ।

प्रातःकाल कटि प्रदेश में भीगे वस्त्र रखकर शांत चित से ध्यानावस्थित होना चाहिए और अपने योनि मार्ग में होकर गर्भाशय तक पहुँचता हुआ गायत्री का प्रकाश सूर्य किरणों जैसा ध्यान करना चाहिए । नेत्र बन्द रहें । यह साधना शीघ्र गर्भ स्थापित करने वाली है । कुन्ती ने इस साधना के बल से गायत्री के दक्षिण भाग (सूर्य भगवान) को आकर्षित करके कुमारी अवस्था में ही कर्ण को जन्म दिया था । यह साधना कुमारी कन्याओं को नहीं करनी चाहिए ।

साधना से उठकर सूर्य को जल चढ़ाना चाहिए और अर्घ्य से बचा हुआ एक चुल्लू जल स्वयं पीना चाहिए । इस प्रयोग से बन्ध्यायें गर्भ धारण करतीं हैं जिनके बच्चे मर जाते हैं या गर्भपात हो जाता है, उनका यह कष्ट मिटकर सन्तोषदायी सन्तान उत्पन्न होती है ।

रोगी, कुबुद्धि आलसी चिड़चिड़े बालको को गोद मे लेकर मातायें हंसवाहिनी, गुलाबी कमल पुष्पों से लदी हुई, शंख, चक्र, हाथ में लिए गायत्री का ध्यान करें और मन ही मन जप करें । माता के जप का प्रभाव गोदी में लगे बालक पर होता है और उसके शरीर तथा

मस्तिष्क में आश्चर्यजनक प्रभाव होता है । छोटा बच्चा हो तो इस साधना के समय माता दूध पिलाती रहे । बच्चा हो तो उनके सिर और शरीर पर हाथ फिराती रहे । बच्चों की शुभ कामना के लिए गुरुवार का व्रत उपयोगी है । साधना से उठकर जल का अर्घ्य सूर्य को चढ़ावें और पीछे बचा हुआ थोड़ा सा जल बच्चों पर मार्जन की तरह छिड़क दें ।

साधकों के लिए कुछ आवश्यक नियम

गायत्री साधना करने वालों के लिए कुछ आवश्यक जानकारियाँ नीचे दी जाती हैं ।

१—साधना के समय शरीर पर कम से कम वस्त्र रहने चाहिए । शीत की अधिकता हो तो कसे हुए कपड़े पहिनने की अपेक्षा कम्बल आदि ओढ़कर शीत निवारण कर लेना उत्तम है ।

२—साधना के लिए एकान्त, खुली हवा की एक ऐसी जगह ढूँढ़नी चाहिए, जहाँ का वातावरण शान्तिमय हो । खेत, बगीचा, जलाशय का किनारा, देव मन्दिर आदि इस कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं, पर जहाँ ऐसा स्थान मिलने में असुविधा हो, वहाँ घर का कोई स्वच्छ और शान्त भाग भी चुना जा सकता है ।

३—उपासना के समय रीढ़ की हड्डी को सदा सीधा रखना चाहिए । कमर झुकाकर बैठने से मेरुदण्ड टेढ़ा हो जाता है और सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का आवागमन होने में बाधा पड़ती है ।

४—बिना बिछाये जमीन पर साधना करने के लिए नहीं बैठना चाहिए । इससे साधना काल में उत्पन्न होने वाली शारीरिक विद्युत जमीन पर उतर जाती है । घास या पत्तों से बने हुए आसन सर्व श्रेष्ठ हैं । कुश का आसन, चटाई, रस्सियों का बना फर्श सबसे अच्छे हैं । इनके बाद सूती आसनों का नम्बर है । ऊन के तथा चर्म के आसन तान्त्रिक कर्मों में प्रयुक्त होते हैं ।

५—माला तुलसी या चन्दन की लेनी चाहिए । रुद्राक्ष, लाल चन्दन, शंख आदि की माला गायत्री के तान्त्रिक प्रयोगों में प्रयुक्त होती हैं ।

६—माला जपते समय सुमेरु (माला के आरम्भ का सबसे बड़ा दाना) का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । एक माला पूरी करके उसे मस्तक तथा नेत्रों से लगाकर पीछे की तरफ उल्टा ही वापस कर लेना चाहिए । इस प्रकार माला पूरी होने पर हरबार उलट कर ही नया आरम्भ करना चाहिए ।

७–साधना के लिए चार बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए, (अ) चित्त एकाग्र रहे, मन इधर–उधर न उछलता फिरे । यदि चित्त बहुत दौड़े तो उसे माता की सुन्दर छवि के ध्यान में लगाना चाहिए । (ब) माता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास हो । अविश्वासी और शंकित मति वाले पूरा लाभ नहीं पा सकते । (स) दृढ़ता के साथ साधना पर अड़े रहना चाहिए । अनुत्साह, मन उचटना, नीरसता प्रतीत होना, जल्दी लाभ न मिलना, अस्वस्थता तथा अन्य सांसारिक कठिनाइयों का मार्ग में आना साधना के विघ्न हैं । इन विघ्नों से लड़ते हुए अपने मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ते रहना चाहिए । (द) निरन्तरता साधना का आवश्यक नियम है । अत्यंत कार्य होने या विषम स्थिति आजाने पर भी किसी न किसी रूप में चलते फिरते ही सही, पर माता की उपासना अवश्य कर लेनी चाहिए । किसी भी दिन नागा या भूल नहीं करनी चाहिए । समय को रोज–रोज नहीं बदलना चाहिए । कभी सबेरे, कभी दुपहर, कभी तीन बजे, कभी दस बजे ऐसी अनियमितता ठीक नहीं । इन चार नियमों के साथ की गयी साधना बड़ी प्रभावशाली होती है ।

८–प्रातः काल की साधना के लिए पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए और शाम को पश्चिम की ओर मुँह करके बैठना चाहिए । प्रकाश की ओर मुँह करना उचित है ।

९–पूजा के लिए फूल न मिलने पर चावल या नारियल की गिरी को कद्दूकस पर कस कर उसके बारीक पत्रों को काम में लाना चाहिए । यदि किसी विधान में रंगीन पुष्पों की आवश्यकता हो तो चावल या गिरी के पत्रों को केसर, हल्दी, गेरू, मेंहदी के देशी रंगों से रंगा जा सकता है । विदेशी अशुद्ध चीजों से बने रंग काम में नहीं लेने चाहिए ।

१०–देरतक एक पालथी से, एक आसन में बैठे रहना कठिन होता है, इसलिए जब एक तरह से बैठे–बैठे थक जावें, तब उन्हें बदला जा सकता है । इसे बलने में दोष नहीं ।

११–मल–मूत्र त्याग या किसी अनिवार्य कार्य के लिए साधना के बीच में उठना पड़े तो शुद्ध जल से हाथ मुँह धोकर तब दुबारा बैठना चाहिए और विक्षेप के लिये एक माला का अतिरिक्त जप प्रायश्चित स्वरूप करना चाहिए ।

१२–यदि किसी दिन अनिवार्य कारण से साधना स्थगित करनी पड़े तो दूसरे दिन एक माला का अतिरिक्त जप दण्डस्वरूप करना चाहिए ।

१३–जन्म या मृत्यु के सूतक हो जाने पर शुद्धि हो जाने तक माला आदि की सहायता से किया जाने वाला विधिवत् जप स्थगित रखना चाहिए । केवल मानसिक जप मन ही मन चालू रख सकते हैं । यदि इस प्रकार का अवसर जप के अनुष्ठान काल में आ जावे तो उतने दिनों अनुष्ठान स्थगित रखना चाहिए । सूतक निवृत्त होने पर उसी संख्या पर से आरम्भ किया जा सकता है, जहाँ से छोड़ा था । उससे विक्षेप काल की शुद्धि के लिए एक हजार जप विशेष रूप से करना चाहिए ।

१४–साधक का आहार सात्विक होना चाहिए आहार में सतोगुणी, सादा, सुपाच्य, ताजे तथा पवित्र हाथों से बनाये हुए पदार्थ होने चाहिए । अधिक मिर्च मसाले वाले तले हुए पकवान, मिष्ठान, बासी, वुसे, दुर्गन्धित मांस, नशीले, अभक्ष्य, उष्ण, दाहक अनीति उपार्जित, गन्दे मनुष्यों द्वारा बनाये हुए, तिरस्कारपूर्वक दिये हुए भोजन से जितना बचा जा सके उतना ही अच्छा है ।

१५–व्यवहार जितना भी प्राकृतिक, धर्म संगत, सरल एवम् सात्विक रह सके उतना ही उत्तम है । फैशन परस्ती, रात्रि में अधिक जागना, दिन में सोना, सिनेमा, नाच रंग, अधिक देखना, परनिन्दा, छिद्रन्वेषण, कलह, दुराचार, ईर्ष्या निष्ठुरता, आलस्य, प्रमाद, मद, मत्सर से जितना बचा जा सके, बचने का प्रयत्न करना चाहिए ।

साधना के उपरान्त पूजा के बचे हुए अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, फूल, जल, दीपक की बत्ती, हवन की भस्म आदि को यों ही जहाँ तहाँ ऐसी जगह नहीं फेंक देना चाहिए जहाँ वह पैर तले कुचलती फिरें । किसी तीर्थ, नदी, जलाशय, देव–मंदिर, कपास, जौ, चावल का खेत आदि पवित्र स्थानों पर विसर्जन करना चाहिए । चावल चिड़ियों के लिए डाल देना चाहिए, नैवेद्य आदि बालकों को बाँट देना चाहिए । जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ्य देना चाहिए ।

१७–वेदोक्त रीति की यौगिक दक्षिणमार्गी क्रियाओं में अन्तर है । योग मार्गी सरल विधियाँ इस पुस्तक में लिखी हुई हैं, उनमें कोई विशेष कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं है । शापमोचन, कवच, कीलक, अर्गल, मुद्रा, अंग न्यास आदि कर्मकाण्ड, तान्त्रिक साधनाओं के लिए हैं । इस पुस्तक के आधार पर साधना करने वालों को उसकी आवश्यकता नहीं है ।

१८–वेद मंत्रों का सस्वर उच्चारण करना उचित होता है । पर सव लोग यथा विधि सस्वर गायत्री का उच्चारण नहीं कर सकते । इसलिए

जप इस प्रकार करना चाहिए कि कण्ठ से ध्वनि होती रहे, होंठ हिलते रहें, पर पास में बैठा हुआ मनुष्य भी स्पष्ट रूप से मंत्र को न सुन सके । इस प्रकार किया गया जप स्वर बन्धनों से मुक्त होता है ।

१९–साधना की अनेकों विधियाँ हैं । अनेक लोग अनेक प्रकार से करते हैं । अपनी साधना विधि दूसरों को बताई जाय तो कुछ न कुछ मीन मेख निकाल कर संदेह और भ्रम उत्पन्न कर देते हैं । इसलिए अपनी साधना विधि हर किसी को नहीं बतानी चाहिए । यदि दूसरे मतभेद प्रकट करें तो अपने साधना गुरू के आदेश को ही सर्वोपरि मानना चाहिए । यदि कोई दोष की बातें होंगी, तो उसका पाप और उत्तरदायित्व उस साधना गुरू पर पड़ेगा । साधक तो निर्दोष और श्रद्धा युक्त होने से सच्ची साधना का ही फल पायेगा । वाल्मीकि जी राम नाम उल्टा जप कर भी सिद्ध हो गये थे ।

२०–गायत्री साधना माता की चरण वन्दना के समान है, यह कभी निष्फल नहीं होती । उल्टा परिणाम भी नहीं होता । भूल हो जाने से अनिष्ट होने की कोई आशंका नहीं । इसलिये निर्भय और प्रसन्न चित्त से उपासना करनी चाहिए । अन्य मंत्र अविधि पूर्वक जपे जाने पर अनिष्ट करते हैं, पर गायत्री में यह बात नहीं है । वह सर्व सुलभ, अत्यन्त सुगम और सब प्रकार सुसाध्य है । हाँ तान्त्रिक विधि से की गयी उपासना पूर्ण विधि विधान के साथ होनी चाहिए, उसमें अन्तर पड़ना हानि कारक है ।

२१–अनुष्ठान काल में कुछ विशेष तपश्चर्यायें करनी होतीं हैं । तपश्चर्याओं का महत्व और स्वरूप इसी पुस्तक के भिन्न अध्याय में दर्शाया गया है । जप की तरह तप भी जितना किया जा सके शुभ ही है । किन्तु वर्तमान जीवन क्रम में अधिक कठोर तपश्चर्याऐं अनुकूल नहीं पड़ती । फिर भी अनुष्ठानों के साथ कुछ नियम तो बनाने ही चाहिए । आज की स्थिति में सर्वोपयोगी या न्यूनतम तपश्चर्याओं के रूप में ५ नियम नीचे दिये जा रहे हैं–

(क) अनुष्ठान काल में ब्रह्मचर्य का पालन करना । यह आत्म नियंत्रण की अंतः शक्ति को सुनियोजित करने के लिए हैं ।

(ख) उपवास का कोई क्रम अपनाना । पेय पदार्थ पर रहना, फल, शाक तक सीमित रहना, एक समय आहार का क्रम, अस्वाद व्रत का पालन जैसे व्रतों को इस क्रम में अपनी शक्ति एवं श्रद्धा के अनुसार अपनाया जाय ।

(ग) चारपाई पर न सोना, तख्त या धरती पर सामान्य कपड़े बिछा कर सोना । यह तितीक्षा वृत्ति के विकास की दृष्टि से है ।

(घ) अपने शरीर की सेवायें स्वयं करना । दाढ़ी बनाना, वस्त्र धोना आदि क्रम स्वयं करना, दूसरों से न कराना । यह स्वावलम्बन एवं सेवा वृत्ति के विकास के लिए साधना चाहिए । अपने शरीर एवं वस्त्रों का स्पर्श यथा साध्य दूसरों से न होने देना भी उचित है ।

(ङ.) चमड़े के जूतों का उपयोग न करना । अनुष्ठान काल में अधिक समय नगे पैर नहीं चलना चाहिए, किन्तु चमड़े के जूतों का प्रयोग न करें । अधिकतर चमड़ा हत्या द्वारा प्राप्त किया जाता है । उसमें क्रूरता के संस्कार रहते हैं । साधक को सद्भावना एवं संवेदना के वातावरण में रहना चाहिए । सार्वभौम आत्मीयता की दृष्टि से यह साधना अपनाई जाती है ।

२२—तप और हवन की तरह अनुष्ठानों के साथ दान की परम्परा भी जुड़ी है । दान देवत्व का प्रतीक है । दान किसी को कुछ भी दे देना नहीं है । किसी व्यक्ति के हित की—कल्याण की भावना से प्रेरित होकर विचार पूर्वक दिया गया दान ही 'दान' कहला सकता है । दानों में धन दानों की अपेक्षा जल दान, अन्न दान, वस्त्र दान आदि का महत्व अधिक है । किन्तु इन सबसे अधिक फल प्रद ज्ञान दान है ।

गायत्री साधना के साथ दान परम्परा में जोड़ने योग्य उपयोगी प्रक्रिया है लोगों को इस परम कल्याणकारी धारा से जोड़ना गायत्री उपासना जैसे महान कल्याण कारक साधन को लोग भूल बैठे हैं । इसका मूल कारण गायत्री के महत्व, महात्म्य एवं विज्ञान की जानकारी न होना है । जानकारी को फैलाने से ही पुनः संसार में गायत्री माता का दिव्य प्रकाश फैलेगा और असंख्यों हीन दशा में पड़ी हुई आत्मायें महापुरुष बनेंगी । इसलिए गायत्री का ज्ञान फैलाना भी अनुष्ठान की भाँति ही महान पुण्य कार्य है । इस प्रकार साधना का नाम 'अनुज्ञान' है ।

जैसे गायत्री की सस्ती पुस्तकें या अन्य अनेक छोटे बड़े प्रकाशनों में से अपनी श्रद्धानुसार २४, १०८, २४०, १००८, २४०० की संख्या में धार्मिक प्रकृति के मनुष्यों को पढ़वाना, दान देना या खरीदवाना 'अनुज्ञान' है । मकर संक्रान्ति पर नवरात्रियों में गायत्री जयन्ती, गंगा दशहरा, अपना जन्म दिन, पूर्वजों के श्राद्ध, पुत्र जन्म, विवाह, सफलता, उन्नति, व्रत, त्यौहार, उत्सव आदि के शुभ अवसरों पर ऐसे अनुज्ञान करते

रहना एक उच्चकोटि की माता को प्रसन्न करने वाली श्रद्धाञ्जलि है । अन्नदान की अपेक्षा ब्रह्मदान का फल हजार गुना अधिक माना गया है ।

चान्द्रायण तप की शास्त्रीय परम्परा

गायत्री उपासना में २४ हजार मंत्र जप के लघु अनुष्ठान की दृष्टि से जो महत्व नवरात्रि साधनाओं का है, सवा लक्ष मंत्र जप में वही महत्व चन्द्रायण व्रत का है । चन्द्रायण का अर्थ एक प्रकार से चंद्रमा की कला के घटने बढ़ने के अनुपात से अपना आहार क्रम घटाना बढ़ाना होता है । अत एव यह प्रतिपदा से पूर्णिमा तक किया जाता है । आश्विन, श्रावण, चैत्र यह तीन महीने उसके लिए बहुत उत्तम माने गये हैं । सुविधानुसार अँग्रेजी तिथियों के अनुसार भी कभी भी चांद्रायण व्रत किये जा सकते हैं ।

धर्मशास्त्र में पाप निवृत्ति और पुण्य प्रवृत्ति के दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उपयुक्त साधन चांद्रायण व्रत बताया गया है । इस पुण्य प्रक्रिया के पाँच प्रमुख भाग यह हैं--(१) एक महीने तथा आहार के घटने--बढ़ने वाला उपवास । (२) गुप्त पापों का प्रकटी करण । (३) आन्तरिक परिवर्तन कर सकने वाले वातावरण में निवास और अनुशासन का प्रतिपालन । (४) अन्तःकरण को परिष्कृत करने वाला योगाभ्यास युक्त तप साधन । (५) दुष्कर्मों की क्षति--पूर्ति और पुण्य वर्धन की परमार्थ परायणता । इन्हें पूरा करने से चंद्रायण तप सम्पन्न होता है । मात्र एक महीने का उपवास ही चंद्रायण नहीं है ।

एक महीने की निर्धारित साधना क्रम में इन पाँचों का समन्वय है--

(१) पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक महीने का उपवास रहता है । पूर्णिमा को पूर्ण आहार करके उसका चौदहवाँ अंश कृष्ण पक्ष में हर दिन घटाया जाता है । शुक्ल पक्ष में उसी क्रम से बढ़ाते रहते हैं । अनभ्यस्त लोगों को 'शिशु' चंद्रायण कराया जाता है और मनस्वी लोगों को यति चंद्रायण । यह स्वास्थ्य संवर्धन के लिए शारीरिक काया कल्प जैसा प्रयोग है । इससे रोगों की जड़ें कटती हैं । परम सात्विक हविष्यान्न ही पेट में जाने से विचार परिष्कार और सद्भाव संवर्धन का उद्देश्य बड़ी अच्छी तरह पूरा होता है । पंच गव्य सेवन, गौ मूत्र से संस्कारित हविष्यान्न का आहार आदि के माध्यम से गौ संपर्क भी सधता रहता है । प्यास बुझाने

के लिए मात्र गंगाजल पर ही निर्भर रहना पड़ता है ।

(२) गुप्त पापों का प्रकटीकरण मात्र ब्रह्म वर्चस् के कुलपति के सम्मुख करके चित्त की भीतरी पर्तो पर जमी हुई दुराव की जटिल ग्रंथियों को खोला जाता है । मानसिक रोगों के निराकरण का यह बहुत ही उत्तम उपचार है । जो किया जा चुका उसके परिमार्जन के लिए क्या करना चाहिए, यह परामर्श प्राप्त करना भी इसी प्रकटी करण का अंग है ।

शीर्ष संस्कार इसी प्रयोजन के लिए है । पूर्ण मुण्डन तो नहीं कराया जाता, पर बाल थोड़े छोटे अवश्य हो जाते हैं । जिसका तात्पर्य है संचित दुष्ट विचारों का परित्याग । बच्चों का मुण्डन संस्कार भी जन्म जनमान्तरों की पशु प्रवृत्तियों को मस्तिष्क में से हटाने के उद्देश्य से ही किया जाता है । बाल छौंटने के अतिरिक्त गो मूत्र, गोमय आदि मंत्र विधान सहित शीर्ष संस्कार किया जाता है । साधक अनुभव करता है कि इस धर्म कृत्य के साथ–साथ उसके मनः संस्थान में अति महत्व पूर्ण परिवर्तन हो रहा है ।

(३) वातावरण का मनुष्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । व्यक्तित्व के परिवर्तन प्रयास में वातावरण का परिवर्तन आवश्यक माना गया है । ब्रह्म वर्चस् आरण्यक में वैसी समुचित सुविधा उपलब्ध है । परिमार्जन, संरक्षण और अभिवर्धन के तीनों उद्देश्य पूरे करने वाली त्रिवेणी यहाँ विद्यमान है । दिनचर्या में स्वाध्याय सत्संग, मनन, चिन्तन के चारों तत्व गुँथे हुए हैं । शारीरिक और मानसिक संयम अनुशासन की कठोर विधि व्यवस्था का पालन करना पड़ता है । प्रवचन और परामर्श का दैनिक लाभ मिलता है । दिनचर्या इतनी अनुशासित और व्यवस्थित रहती है कि उस ढर्रे में ढल जाने वाला भविष्य में अपने आप को सर्वतोमुखी प्रगति में सहायक ढाँचे में ही ढाल लेता है । वातावरण का प्रभाव अभिनव परिवर्तन के रूप में निरन्तर अनुभव होता रहता है । इस तरह का वातावरण अन्यत्र मिले तो वहाँ भी करने में कुछ हर्ज नहीं ।

(४) अन्तःकरण में दैवी संस्कारों की जड़ जमाने वाले योगाभ्यास और तप साधन चांद्रायण के साथ–साथ ही करने होते हैं । सवा लक्ष्य गायत्री पुरश्चरण अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं । गायत्री यज्ञ नित्य नहीं तो अन्तिम दिन अवश्य सम्पन्न किया जाना चाहिए ।

(५) पापों की क्षति पूर्ति एवं पुण्य सम्पदा की अभिवृद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत की पूर्णाहुति के रूप में कुछ अवांछनीयताओं का परित्याग और कुछ परमार्थों को अपनाने का संकल्प करना होता है । संग्रह

का अंशदान तीर्थयात्रा के रूप में धर्म प्रचार का श्रम दान, पुण्य प्रयोजनों में सहकार, सत्सृजन में योगदान जैसे कुछ कदम ऐसे उठाने के लिए परामर्श दिया जाता है जिनके सहारे अन्तःकरण पर परिवर्तन को व्यवहार में उतारने की छाप प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगे । आन्तरिक काया-कल्प चांद्रायण तपश्चर्या का उद्देश्य है । यह कल्पना क्षेत्र तक ही सीमित बनकर न रह जाय वरन् व्यवहार में भी परिलक्षित होने लगे इसके लिए कुछ क्रियात्मक कदम उठाने के लिए वैसा परामर्श मिलता है जो प्रस्तुत परिस्थितियों में सफलता पूर्वक शक्य हो सके । उपलब्ध सुसंस्कार परिपक्वता के लिए दूसरों के सम्मुख परिवर्तन का परिमाण प्रस्तुत करने के लिए कुछ साहसिक कदम उठाने पड़ते हैं । यही चांद्रायण की पूर्णाहुति है ।

शास्त्रों, पुराणों में चांद्रायण तप की महत्ता स्थान-स्थान पर प्रतिपादित की गई है । जीवन में हुई भूलों के कारण अन्तःकरण में छाये मल अवसाद के परिमार्जन की दृष्टि से उसे अमोघ साधन माना गया था । वह प्रतिपादन इस प्रकार है ।

परम पवित्रता दायक चांद्रायण तप

धर्म-शास्त्रों में प्रयश्चित्तों के अनेकों विधि-विधान बताये गये हैं । उन सबमें उपवास की तपश्चर्या को प्रधानता दी गई है । गीता में 'उपवास से विषयों की निवृत्ति' होना बताया गया है । लिप्सा और लालसा, लोभ और मोह, वासना और तृष्णा यही हैं, वे आन्तरिक विष बीज जिनके कारण अनेक प्रकार के दुष्कर्म बन पड़ते हैं । इन्हीं आन्तरिक दुष्ट उभारों को विषय कहा गया है विषयों की निवृत्ति के लिए उपवास का कठोर अनुशासन अपनाना पड़ता है और उसके उपरान्त आहार में सात्विकता का समावेश करना पड़ता है । मन की प्रवृत्तियों के निर्माण में अन्न ही बीज रूप होता है । आहार की सात्विकता से मन को शान्त और सुसंस्कारी बनाने में सफलता मिलती है । यह सारी प्रक्रिया उपवास मर्यादा के अन्तर्गत आती है । प्रायश्चित विधान का प्रथम चरण यही है । किन्तु बात इतने से ही समाप्त नहीं हो जाती ।

प्रायश्चित के अगले चरण और भी हैं जिनमें पाप का प्रकटीकरण, दूसरों को पहुँचाई गई क्षति पूर्ति इनमें से प्रमुख हैं । जो किया गया था, उसकी भविष्य में पुनरावृत्ति न करने की प्रतिज्ञा भी इसी विधान के

अन्तर्गत आती है । यह सब तो हुआ दण्ड प्रकरण । यह प्रायश्चित का एक पक्ष है । दूसरा पक्ष है श्रेष्ठता का साधना का समन्वय जिससे हटाये हुए कुसंस्कारों का रिक्त हुआ स्थान श्रेष्ठ संस्कार ग्रहण न कर सके । इन पुण्य विधान को रचनात्मक प्रयोजन में लगाया जा सके । मात्र पाप बन्द कर देना या उसका दण्ड भुगत लेना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् जो प्रयत्न दुष्कर्मों की हानिकारक प्रक्रिया के लिए चल रहा था वही उलट कर श्रेष्ठता सम्पादन में लग पड़े तब समझना चाहिए कि प्रयश्चित प्रक्रिया पूर्ण हुई ।

प्रायश्चित विधान में चान्द्रायण तपश्चर्या को प्रमुखता दी गई है । उसके दो पक्ष हैं– एक परिशोधन दूसरा अभिवर्धन । इस साधना से संञ्चित पाप प्रवृत्तियों और कुसंस्कारों का जहाँ शमन होता है, वहाँ आत्मोत्कर्ष के लिए प्रबल प्रयत्नों का भी साथ ही नियोजन होता है । अवांछनीयता का ध्वंस और उपयोगिता का सृजन यह दोनों ही कृत्य चांद्रायण साधना से होते हैं इसलिए उसे दण्ड विधान नहीं, वरन् तप साधन की संज्ञा दी गयी है । पाप निवारण भी उसका महत्वपूर्ण अंग है ।

चांद्रायण का सामान्य व्रत विधान

शास्त्रों में प्रायश्चित प्रकरण में कई प्रकार के विधानों का वर्णन है । कृच्छ, अतिकृच्छ, तप्तकृच्छ, सौम्य कृच्छ, पाद कृच्छ, महा कृच्छ, कृच्छाति कृच्छ, पर्ण कृच्छ, सान्तापन, कृच्छ सान्तापन, महा सान्तापन, प्रजापत्य, पराक, ब्रह्मकूर्य आदि विधानों का उल्लेख है । इनमें चांद्रायण व्रतों को तप में सर्व प्रमुख माना गया है ।

उनकी क्रिया–प्रक्रिया सर्वविदित है । मोटे नियम इस प्रकार हैं–

एकैकं ह्रसयेत्पिण्ड कृष्णे, शुक्ले च वर्द्धयेत ।
इन्दुक्षयेन पुंजीत एवचान्द्रायणो विधि ।। –वशिष्ठ

पूर्णमासी को पूर्ण भोजन करके एक–एक ग्रास घटाता जाय । चंद्रमा न दीखने पर अमावस्या और प्रतिपदा को निराहार रहे । पीछे एक–एक ग्रास बढ़ाकर शुक्ल पक्ष के १४ दिनों में पूर्ण आहार तक पहुँच जाय ।

ग्रास से तात्पर्य मुर्गी के अण्डे जितना तथा मुँह में जितना आहार एक बार में आ सके उतना है–

कुक्कुटाण्ड प्रमाणं स्याद यावद् वास्य मुखे विशेत् ।
एतग्रासं विजानीयुः शुद्धयर्थे काय शोधनम् ।।

–अत्रि

"मुर्गी के अण्डे के बराबर या जितना सुविधा पूर्वक मुख में आ सकता हो उतना बड़ा ग्रास चांद्रायण में ग्रहण करना चाहिए ।"

ग्रास परिमाण के झंझट में पहुँचने की अपेक्षा यह उत्तम है कि पूर्णिमा वाले आहार का चौदहवाँ अंश कृष्ण पक्ष में घटाता जाय और शुक्ल पक्ष में उसी अनुपात से हर दिनों बढ़ाते चला जाय ।

नित्य स्नायी मिताहारी गुरुदेव द्विजार्चकः ।
पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ।।
व्रीहिणाष्टिक मुद्गाश्च गोधूम सतीला यवाः ।
चरुभैक्ष्यं सक्तुवणाः शांवाघृत दधि पयः ।।

—अग्नि पुराण

नित्य स्नान करें, भूख से कम खायें, गुरू, देव, ब्रह्म परायणों का अभिवादन करे, पवित्र रहे, जप करे, हवन करे ।

जौ, चावल, मूँग, गेहूँ, तिल, हविष्यान्न, सत्तू, शाक दूध, दही, घृत पर निर्वाह करे ।

चांद्रायण के भेद हैं (१) पिपीलिका (२) यव मध्य (३) यति (४) शिशु । इन चारों के अन्य नियम समान हैं, पर आहार सम्बन्धी कठोरता, न्यूनाधिक है । यदि तपश्चर्या अधिक कठिन है और शिशु व्रत साधन में शरीर और मन की स्थिति को देखते हुए सरलता रखी गयी है ।

पाप पर से पर्दा हटाया जाय

पापों के प्रकटीकरण की प्रक्रिया का एक स्वरूप तो मुण्डन कराने—बाल कटाने के रूप में प्रतीक चिन्ह की तरह है । दूसरा चरण है प्रकटीकरण । यह मात्र किसी सत्पात्र के सम्मुख ही हो सकता है । सार्वजनिक घोषणा कर सकने का किसी में साहस हो तो और भी उत्तम । पर इस प्रकटीकरण में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि व्यभिचार जैसी प्रक्रियाओं में साथी का नाम, पता आदि प्रकट न किया जाय ।

पापों पर पड़े हुए पर्दे को उठाने और प्रकटीकरण की विधा पूरी करने के लिए शास्त्र निर्देश इस प्रकार है—

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वाऽनुभाषिते ।
तथा तथा त्वचेवाहि स्तेनाधर्मेण मुच्यते ।।

—मनुस्मृति

जैसे—जैसे मनुष्य अपना अधर्म लोगों में ज्यों का त्यों प्रकट करता है

वैसे वैसे ही वह अधर्म से उसी प्रकार मुक्त होता है जैसे केंचुली से साँप ।

समत्वे सति राजेन्द्र तयोः सुकृत पापेयाः ।
गूहितस्य भवेद् वृद्धि कीर्तितस्य भवद् क्षयः ।।

—महाभारत

राजेन्द्र जब पुण्य—पाप दोनों समान होते हैं, तब जिसको गुप्त रखा जाता है, उसकी वृद्धि होती है और जिसका वर्णन कर दिया जाता है उसका क्षय हो जाता है ।

तस्मात् प्रकाशयेत् पापं स्वधर्म सततं चरेत् ।
क्लीवा दुःखी च कुष्ठी च सप्त जन्मानि वै नरः ।।

—पाराशर स्मृति

पाप को छिपाने से मनुष्य सात जन्मों तक दुःखी, नपुंसक होता है । इसलिए पाप को प्रकट कर देना ही उत्तम है ।

आचक्षाणेनतत्पापमेतकर्म्मास्मिशाधिमाम् ।

वह अपने किये हुए पाप को भी मुँह से कहता हुआ दौड़े कि मैं ऐसे कर्म के करने वाला हूँ, मुझे दण्डाज्ञा प्रदान कीजिए ।

कृत्वा पापं न गूहेत् गुह्यमानं विवर्द्धते ।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्धायो निवेदयेत ।।
ते हि पापे कृते वेद्‌या हन्तारश्चैव पाप्मनाम् ।
व्याधितस्य यथा वैद्‌या बुद्धिमन्तो रुजापहाः ।।

—पाराशर स्मृति

पाप कर्म बन पड़ने पर उसे छिपाना नहीं चाहिए । छिपाने से वह बहुत बढ़ता है । पाप छोटा हो या बड़ा उसे किसी धर्मज्ञ से प्रकट अवश्य कर देना चाहिए । इस प्रकार उसे प्रकट कर देने से पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे चिकित्सा करा लेने पर रोग नष्ट हो जाते हैं ।

रहस्यं प्रकाश्यं च । —प्रायश्चितेन्दु शेखर

पापं नश्यति कीर्तनात् । —धर्म सिन्धु

रहस्य के पर्दे को उठा देना चाहिए । पाप के प्रकटीकरण से वे धुल जाते हैं ।

तस्मात् पापं न गुह्येत् गुह्मानं विवर्धयेत ।
कृत्वातत् साधुरवमूयतेतत् शमयन्त्युत ।।

—महा. अनु.

अतः अपने पाप को न छिपावें, छिपाया हुआ पाप बढ़ता है । यदि

कभी पाप बन गया हो तो उसे साधु पुरूषों से कह देना चाहिए । वे उसकी शान्ति कर देते हैं ।

तद् यदिह पुरुषस्य पाप कृतम्भवति तदा निष्करोति यदि है न दपि रहसीव कूर्वन्मन्यतेथ हैन दाविरेव करोति । तस्याद्वाव पापं न कुर्यात् ।

—जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण

जब मनुष्य में दिव्य वाणी प्रकट होती है तब वह अपने पाप प्रकट करते हैं । मनुष्य ने जो पाप नितान्त गोपनीय रखे थे उन्हें भी वह प्रकट कर देती है ।

दुष्कर्मों के कितने ही बुरे प्रभाव अन्तःक्षेत्र पर पड़ते हैं । वे कुकृत्य चेतना की गहराई में पहुँच कर सुसंस्कारों के रूप में जड़ जमा कर बैठ जाते हैं और घुन की तरह उस क्षेत्र की गरिमा को नष्ट करते चले जाते हैं । उनके दुष्परिणाम समय—समय पर आधि—व्याधि और आकस्मिक दुर्घटनाओं के रूप में सामने आते रहते है ।

मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार अन्तः भूमि को क्षतविक्षत करने वाला सबसे बड़ा कारण है दुराव । दुष्कर्मों के करते समय भी सामने वाले से छल करना पड़ता है । वस्तु स्थिति जान लेने पर तो आक्रमण सफल ही न हो सकेगा । इसके उपरान्त राज दण्ड तथा समाज दण्ड से बचने के लिए उन कृत्यों को छिपा कर रखा जाता है । किसी पर प्रकट नहीं होने दिया जाता । यह दुराव हज़म तो होता नहीं । पारा खा लेने पर वह पचता नहीं, वह फूट—फूटकर शरीर में फोड़े और घाव बन कर निकलता रहता है । ठीक इसी प्रकार कृत्यों का दुराव भी अनेकों प्रकार के मानसिक और शारीरिक रोग उत्पन्न करता और आजीवन कष्ट देता रहता है । अन्तर्द्वन्द तब तक चलता ही रहता है, जब तक उसका प्रकटीकरण और प्रायश्चित करके परिशोधन न कर दिया जाय ।

परिशोधन प्रक्रिया में प्रकटीकरण भी एक उपचार है । जो कुकृत्य बन पड़े हैं उनका प्रकटीकरण आवश्यक है । पर वह होना उन्ही के सामने चाहिए जो इतना उदार हो कि चिकित्सक की करुणा से अपराधों को धैर्यपूर्वक सुन सके और घृणा धारण किये बिना उन्हें अपने भीतर पचा सके । प्रकट करने वाले की निन्दा न होने दें । उसे उस प्रकटीकरण के कारण लोक निन्दा के द्वारा होने वाली क्षति न पहुँचने दें, वरन् उसे स्नेह पूर्वक सत्परामर्श देकर सुधरने में सहायता करें । ऐसे व्यक्ति जब

तक न मिलें तब तक प्रकटीकरण नहीं करना ही उचित है । ईसाई धर्म में मरने से पूर्व पाप स्वीकृति का वर्णन – कनफेशन आवश्यक धर्म कृत्य माना जाता है । समय रहते पादरी को बुलाया जाता है । एकान्त में मरणासन्न व्यक्ति जीवन भर के अपने पाप को विस्तार पूर्वक बताता है और जी हल्का करता है । पादरी को पिता कहते हैं । उसमें परम् करुणा रहती है । वह धैर्य और शान्ति पूर्वक उसे सुनता है और ईश्वर से क्षमा की प्रार्थना करता है । न उसके मन में घृणा होती है और न औरों पर प्रकट करने की क्षुद्रता का परिचय देना ही उसकी गरिमा के उपयुक्त होता है ।

चांद्रायण में केश काटने का संस्कार

चांद्रायण व्रत लेते समय शिर के केश काटने का, मुण्डन कराने का विधान है । इतना न बन पड़े तो कृत्य किसी न किसी रूप में करना ही होता है । इनमें मस्तिष्क में भरे हुए पुराने विचारों को बदलने की प्रतीक प्रतिज्ञा है । यहाँ बालों को विचारों का प्रतीक माना गया है । इसलिए उन्हें बालकों के मुण्डन संस्कार की तरह भी आवश्यक माना जाता है । बालों का मुण्डन कराने के पीछे उद्देश्य यह है कि पिछले कुसंस्कार जो मस्तिष्क के भीतर भरे हुए हैं उनका उन्मूलन आवश्यक है, तभी मनुष्यता की गौरव गरिमा उपलब्ध हो सकती है । इस परिवर्तन का प्रतीक बालों का काटना माना गया है तीर्थ में जाकर भी मुण्डन कराने का तात्पर्य यह है कि वहाँ पहुँचने के उपरान्त कुसंस्कारों की जो अवधारणा मस्तिष्क में थी वह बदल दी । इसी प्रकार मृत्यु शोक के सन्तापदायी विचारों से छुटकारा पाने के लिए श्राद्ध के समय मुण्डन कराया जाता है ।

चान्द्रायण व्रत के समय मुण्डन का विधान है । वैसा जो न कर सके उन्हें प्रतीक रूप में शिर के बालों को हलके तो करा ही लेना चाहिए । इसके दो उद्देश्य हैं–एक पशु प्रवृत्तियों के परित्याग की दुर्बुद्धि को निरस्त करने की प्रतीक प्रतिज्ञा है । दूसरे पापों की स्वीकृति एवं घोषणा है । इसमें समाज में प्रतिष्ठा बनाये रहने और पाप छिपाये रहने से निवृत्ति पाने का संकल्प है ।

सर्वविदित है कि मुण्डन संस्कार में बालों को गोमूत्र, गोबर एवं पंचगव्य से धोया, सींचा जाता है । चांद्रायण व्रत के समय भी जब बाल

बनवाये जाते हैं तो मस्तिष्क का संस्कार पंचगव्य से ही किया जाता है । मुण्डन से पूर्व यह गोरस सिंचन किया जाय या पीछे, यह सुविधा के ऊपर निर्भर है, पर किसी न किसी के रूप में उसे किया जाना आवश्यक है ।

बाल कटाने के सम्बन्ध में चांद्रायण व्रत कर्ता के लिए शास्त्र निर्देश इस प्रकार है–

शिरसं कृन्तनं पुद्धे मुण्डनं तद्वदेव हि ।
वेदेऽपि स्थिरमेतद्धि समानं समुदाहृतम् ।। –योगिनी तन्त्र

शिर छेदन और शिर मुण्डन एक कार्य है, वेद में यह दोनों कार्य समान कहे गये हैं ।

श्मश्रुकेशान् वापयेत् भ्रुवोऽक्षि लोमशिखावर्जम नखाननिकृन्त्य ।

'व्रत के आरम्भ में दाढ़ी, मूँछ और सिर के बालों को कटालें । भौंह आदि और शिखा न कटाई जाय ।

इन समस्त अभिवचनों में चान्द्रायण व्रत कर्ता के लिए पूर्ण मुण्डन की इच्छा न हो तो बाल कटाने उनकी लम्बाई घटाने की आवश्यकता तो रहती ही है ।

प्रायश्चित का अति महत्वपूर्ण पथ–क्षति पूर्ति

पापों में तीन वर्ग के पापों की प्रधानता होती है–(१) निरपराध सताना, आक्रमण, (२) व्यभिचार–बलात्कार, (३) आर्थिक शोषण, अपहरण, चोरी, बेईमानी ।

पाप कर्मों का प्रायश्चित करने में पश्चात्ताप वर्ग की पूर्ति, व्रत उपवास से, शारीरिक कष्ट सहने से, तितीक्षा कृत्यों से होती है । किन्तु क्षति पूर्ति का प्रश्न फिर भी सामने रहता है । इसके लिए पुण्य कर्म करने होते हैं, ताकि पाप के रूप में जो खाई खोदी गई थी वह पट सके पुण्य पाप का पलड़ा बराबर हो सके । दुष्प्रवृत्तियों को सत्प्रवृत्तियों से ही पाटा जा सकता है । इसलिए दुष्कर्म करके जो व्यक्ति विशेष को हानि पहुँचाई गई, समाज में भ्रष्ट अनुकरण की परम्परा चलाई गई, वातावरण में विषाक्त प्रवाह फैलाया गया, उसको निरस्त तभी किया जा सकता है, जब सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन करने वाले पुण्य कर्म करके उसकी क्षति पूर्ति की जाय । समाज को सुखी और समुन्नत बनाने वाली सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन किया जाय । इसके लिए समय, श्रम एवं मनोयोग लगाया जाय । धर्म प्रचार की पद यात्रा करके लोक प्रेरणा देने वाले तीर्थ यात्रा जैसे पुण्य कर्म किये जाँय । जो घटना घट चुकी वह अनहोनी तो

नहीं हो सकती । आक्रामक कुकर्मों की क्षति पूर्ति इसी में है कि लगभग उतने ही वजन के सत्कर्म सम्पन्न किये जाँय ।

व्यभिचारजन्य पापों का प्रायश्चित्त यही है कि नारी को हेय स्थिति से उबारने के लिए उसे समर्थ एवं सुयोग्य बनाने के लिए पुरुषार्थ बन पड़े उसे लगाने के सच्चे मन से प्रयत्न किया जाय ।

आर्थिक अपराधों का प्रायश्चित यह है कि अनीति उपार्जित धन उसके मालिक को लौटा दिया जाय अथवा सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के श्रेष्ठ कार्मों में उसे लगा दिया जाय । इस अर्थ दान को प्रायश्चित्त विधान का आवश्यक अंग इसलिए माना गया है कि अधिकांश पाप अर्थ लोभ से किये जाते हैं और उसे न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भौतिक लाभ उठाने का उद्देश्य रहता है । यह अनीति उपार्जित धन अपने लिए और अपने परिवार वालों के लिए समयानुसार भयंकर विपत्तियाँ ही उत्पन्न करता है । भले ही तत्काल उससे कोई कमाई होने और सुविधा मिलने जैसा लाभ ही प्रतीत क्यों न होता हो ।

जो कमाया गया है उसे बगल में दबा कर रखा जाय, अनीति उपार्जित सुविधाओं का परित्याग न किया जाय, मात्र घड़ियाल के आँसू बहाकर व्रत, उपवास जैसी लकीर पीट दी जाय तो उतने भर से कुछ बनेगा नहीं । व्रत, उपवास तो अनीति अपनाने से आत्मा पर चढ़ी कषाय–कल्मषों की परत धोने भर के लिए है । क्षति पूर्ति का प्रश्न तो फिर भी जहाँ का तहाँ रहता है । जो अनीति वरती है उसकी हानि की भरपाई कर सकना वर्तमान परिस्थितियों में जितना अधिक से अधिक सम्भव हो उसके लिए उदार साहस जुटाना चाहिए । घटनाओं की क्षति पूर्ति अर्थ दण्ड सहने से भी हो सकती है । रेल दुर्घटना आदि होने पर मरने वालों के घर वालों को सरकार अनुदान देती है । उसमें क्षति पूर्ति के लिए आर्थिक प्रावधान को भी एक उपाय माना गया है । प्रायश्चित विधानों में क्षति पूर्ति की दृष्टि से दान को महत्व दिया गया है । दानों में गौ दान, उपयोगी निर्माण आदि के कितने ही उपाय सुझाये गये हैं । वे जिससे जितने बन पड़ें उन्हें वे उतनी मात्रा में करने चाहिए । कुछ भी न बन पड़े तो श्रमदान, सत्कर्मों में योगदान तो किसी न किसी रूप में हर किसी के लिए सम्भव हो सकता है । शास्त्र कहता है–

सर्वस्व दानं विधिवत्सर्व पाप विशोधनम् । –कूर्म पुराण

अनीति से संग्रह किये हुए धन को दान कर देने पर ही पाप का निवारण होता है ।

दत्वै वापहृतं द्रव्यं धनिकस्याभ्यु पापतः ।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्यात् कलुषस्य पापनुत्तये ।।

—विष्णु स्मृति

जिसका जो पैसा चुराया हो उसे वापिस करे और उस चोर कर्म का प्रयश्चित्त करे ।

वापसी सम्भव न हो तो अनीति उपार्जित साधनों का बड़े से बड़ा अंश श्रेष्ठ सत्कर्मों में लगा देना चाहिए ।

प्रयश्चित्त में उपवास की तरह दान भी आवश्यक है । दोनों एक दूसरे के साथ परस्पर जुड़े हुए हैं ।

प्राज्ञः प्रतिगृह्हं कृत्वा तद्धनं सद्‌गतिं नयेत् यज्ञाद्धा पतितोद्धार पुण्यात् न्याय रक्षणेवापी कूप तड़ागेषु ब्रह्मकर्म समत्सृजेत् ।

—अरुण समृति

अनुचित धन जमा हो तो उसे यज्ञ, पतिद्धार, पुण्य कर्म, न्याय रक्षण, वावड़ी, कुआ, तालाब आदि का निर्माण एवं ब्रह्म कर्मों में लगा दें । अनुचित धन की सद्‌गति इसी प्रकार होती है ।

तेनोदपानं कर्त्तव्यं रोपणीयस्तथा वटः ।

—शाता.

सच्छास्त्र पुस्तकं दद्यात् विप्राय स दक्षिणाम् ।

—पाराशर

वापी कूप तडागादि देवता यतनानि च ।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु व्रत पूर्ण समाचरित् ।।

—यम

सोपि पाप विशुद्धयर्थं चरेच्चान्द्रायण व्रतम् ।
व्रतान्ते पुस्तकं दद्यात् धेनु वत्स समन्वितम् ।।

—शातायन

सुवर्ण दानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ।
नाशयन्त्याशु पापानि अन्यजन्म कृतान्यपि ।।

—सम्वर्त

इन सभी वचनों में सत्साहित्य वितरण, विद्यादान. वृक्षारोपण. कुआ, तालाब, देवालय आदि का निर्माण, यज्ञ, दुःखियों की सेवा, अन्याय पीड़ितों के लिए संघर्ष आदि अनेक शुभ कर्मों में क्षति की पूर्ति के रूप में अधिक

से अधिक उदारता पूर्वक दान देने का विधान है । इस दान श्रंखला में गौ दान को विशेष महत्व दिया गया है । गौ की गरिमा को शास्त्रों में अत्यधिक महत्व दिया गया है । इसलिए गौदान की महिमा बताते हुए प्रायश्चित व्रतों के साथ उसे भी जोड़कर रखा गया है । यथा–

गोदानं च तथा तेषुकर्तव्य पाप शोधनम् ।

–वृद्ध सूर्यारूण

'यत्र यावत् संख्यया' प्राजापत्या न्यावर्तनीयानि भवन्ति तत्र तावत् संख्यया गोदान्यावर्तनीयानि ।

–सूर्यारूपा

जिस प्रायश्चित्त में जितने प्राजापत्यादि व्रतों की संख्या का निर्धारण हो उनमें उतनी ही गौओं के दान का भी समावेश समझा जाना चाहिए ।

राजा दिलीप और उनकी पत्नी ने महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में रहकर गौ चराने का व्रत लिया था । गौ सम्पर्क में जो प्रभाव रहता है उससे भी सात्विकता की वृद्धि और पापों की निवृत्ति में बहुत योगदान मिलता है ।

चांद्रायण व्रत और गौ सम्पर्क

चांद्रायण व्रत के साथ गौ सम्पर्क जुड़ा हुआ है । इस तपश्चर्या के अनेक कार्य ऐसे हैं जिनमें गौ को किसी न किसी प्रकार साथ लेकर चलना पड़ता है ।

मुख में कोई अन्य वस्तु जाने देने से पहले चान्द्रायण व्रत कर्ता को 'पंचगव्य' ग्रहण करना होता है । इसके उपरान्त ही कोई अन्य वस्तु मुँह में जानी चाहिए । 'पंचगव्य' गाय के दूध, दही, घृत, गोमूत्र, गोमय के सम्मिश्रण को कहते हैं । उसमें तुलसी पत्र और गंगाजल भी मिलाया जाता है ।

तत्राप्यशक्ता चैकेन पंचगव्यं पिबेत्ततः ।

–आपस्तंव

पंचगव्येन शुध्यति ।

–आपस्तंव

शुध्यते पंच गव्येन पीत्वा तोयमकामतः ।

—सम्वर्त

मृत्तिका शोधनं स्नानं पंचगव्यं विशोधनम् ।

—अंगिरा

गोमूत्रं, गोमयं, क्षीरं, दधि, घृतं कुशोदकम् ।
तिदिष्टम् पंचगव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम् ।।

—सम्वर्त

पतितं प्रेक्षितं वापि पंचगव्येन शुध्यति ।

—अत्रि

श्रृणु पाण्डव तत्वेन, सर्व पाप प्राणशनम् ।
पापिनो येन शुद्धयन्ति तत्ते वक्ष्यामि सर्वशः ।।
यथावत्कर्तु कामोयस्तस्य यं प्रथमंनु यः ।
शोधयेत्तु शरीरं स्वं पंचगव्ये पवित्रतः ।।

—वृद्ध गौतम

यह चांद्रायण व्रत समस्त पापों का शमन करने वाला है, कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । उसे आरम्भ करते हुए शरीर को पंचगव्य से पवित्र बनान चाहिए ।

धर्म–प्रचार की पदयात्रा–तीर्थयात्रा

पाप निवृत्ति और पुण्य वृद्धि दोनों प्रयोजनों की पूर्ति के लिए तीर्थ यात्रा को शास्त्रकारों ने प्रायश्चित की तप साधना में सम्मिलित किया है । तीर्थ यात्रा का मूल उद्देश्य है धर्म प्रचार के लिए की गयी पद यात्रा । दूर–दूर क्षेत्रों में जन सम्पर्क साधने और धर्म धारणा को लोक मानस में ह्दयंगम करने का श्रमदान तीर्थयात्रा कहलाता है । श्रेष्ठ सत्पुरुषों के सान्निध्य में प्रेरणाप्रद वातावरण में रहकर अत्मोत्कर्ष का अभ्यास करना भी तीर्थ यात्रा कहलाता है । यों गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने के लिए किये गये प्रबल प्रयासों को भी तीर्थ कहा गया है । तीर्थ का तात्पर्य है तरना । अपने साथ–साथ दूसरों को तारने वाले प्रयासों को तीर्थ कहते हैं ।

प्रायश्चित्त विधान में तीर्थयात्रा की आवश्यकता बताई गई है ।

आज की तथा कथित तीर्थयात्रा मात्र देवालयों के दर्शन और नदी सरोवरों के स्नान आदि तक सीमित रहती है । यह पर्यटन मात्र है । इतने भर से तीर्थयात्रा का उद्देश्य पूरा नहीं होता है । सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन के लिए किया गया पैदल परिभ्रमण ही तीर्थ यात्रा कहलाता है । यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के लिए श्रेष्ठ उपचार भी है । धर्म प्रचार के लिए जन सम्पर्क साधने का पैदल परिभ्रमण जन समाज को उपयुक्त प्रेरणायें प्रदान करता है । साथ–साथ ही उस श्रमदान से कर्ता की सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन भी होता चलता है । ऐसे ही अनेक कारणों को ध्यान में रख कर तीर्थयात्रा को ऐसा परमार्थ कहा गया है जिसे कर सकना प्रत्येक श्रमदान करने में समर्थ व्यक्ति के लिए सम्भव हो सकता है । तीर्थयात्रा का स्वरूप और महात्म्य शास्त्रकारों ने इस प्रकार बताया है––

नृणां पापकृतां तीर्थां पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्त फलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ।।

पापी मनुष्यों के तीर्थ में जाने से उनके पाप की शान्ति होती है । जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, ऐसे मनुष्यों के लिए तीर्थ यथोक्त फल देने वाला है ।

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्धायुक्तं समाहितः ।
कृतपापो विशुद्धश्चेत् किं पुनः शुद्ध कर्मकृत ।।

जो तीर्थों का सेवन करने वाला, धैर्यवान् श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त है, वह पहले का पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है। फिर जो शुद्ध कर्म करने वाला है, उनकी तो बात ही क्या है ।

तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये ।
सर्वद्वन्द्वसद्धा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।।

जो यथोक्त विधि से तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वंदों को सहन करने वाले हैं वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं ।

यावत् स्वस्थोऽस्ति मे देहो यावन्नेन्द्रियविक्लवः ।
तावत् स्वश्रेयसा हेतुः तीर्थयात्रां करोम्यहम् ।।

जब तक मेरा शरीर स्वस्थ है, जब तक आँख, कान आदि इन्द्रियाँ सक्रिय हैं, तब तक श्रेय प्राप्ति के लिए तीर्थयात्रा करते रहने का निश्चय करता हूँ ।

तीर्थ परम्परा भारतीय संस्कृति का प्रमाण रही है । पर उसे तप के रूप में ही प्रयुक्त किया गया है । आज तो यात्राऐं पर्यटन तथा मनोरञ्जन के लिए होती हैं । उनसे पाप परिशोधन तो कुछ होता नहीं उल्टे पाप वृद्धि ही होती है । अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं का आर्ष–स्वरूप बनाये रखने की दृष्टि से इस मिशन द्वारा २४०० गायत्री शक्तिपीठों (तीर्थों) की स्थापना हुई है । तीर्थ सेवन के इच्छुक परिजन इन स्थापनाओं का पुण्य लाभ लेकर चान्द्रायण तप सम्पन्न कर सकते हैं ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा